युक्रांद

नव संन्यास अंतर्राष्ट्रीय के बढ़ते चरण

भगवान रजनीश की पावन प्रेरणा से विश्व भ्रमण पर निकली नव-संन्यासियों की संकीर्त्तन मंडलियां देश के कोने-कोने में ध्यान-साधना, कीर्त्तन-नर्तन, प्रवचन तथा साहित्य के प्रचार-प्रसार से जन-जागरण के आध्यात्मिक पावन कार्य को कर रही हैं। स्वामी चैतन्य भारती के नेतृत्व में एक मंडली काश्मीर और हिमाचल प्रदेश में जागृति अभियान पर है, तो स्वामी महेश योगी नागपुर-महाराष्ट्र के दौरे पर हैं।

इसी क्रम में मा आनन्द मधु के संयोजन और स्वामी वैराग्य अमृत के नेतृत्व में एक मंडली उत्तर प्रदेश के दौरे पर है, जिसका आगामी कार्यक्रम इस प्रकार है:

स्थान	तारीख	संयोजक
हरिद्वार	३०, ३१, जुलाई एवं १, २, ३, ४, ५, अगस्त	एस० के० अरोरा, प्रसाद वाले, गायघाट, हरिद्वार
अलीगढ़	७, ८, ९, १० अगस्त	श्री सुखनंद जी जैन, C/o जैन प्रोडक्ट्स, जैनपुरी, अलीगढ़
हाथरस	१२, १३, १४ अगस्त	श्री हजारीलाल जी वाठिया, C/o श्री रतनचन्द हजारीलाल एंड कं० घंटाघर (गली मुरजीयाल) हाथरस फोन : २१२
कानपुर	१६, १७, १८, १९, २० अगस्त	श्री सनत कुमार जी जैन, ४८।१३९, जनरलगंज, कानपुर
लखनऊ	२२, २३, २४, २५, २६ अगस्त	डा० देवकीनंदन जी श्रीवास्तव 'प्राण-कुटी'—शिवपुरी, गौतम बुद्ध मार्ग, लखनऊ
इलाहाबाद	२८, २९, ३०, ३१ अगस्त	श्री रमेशकुमार, कमल कुंज, ३—A महात्मा गांधी रोड, निकट-हाईकोर्ट, इलाहाबाद
बनारस	२, ३, ४, ५, ६, ७ सितंबर	श्री ज्ञान जी भाई, जैन स्टोर्स कुदई चौक, वाराणसी, फोन : ३३०५

भगवान रजनीश की सृजनात्मक
जीवन दृष्टि की मासिक
संकलन पत्रिका

जुलाई १९७२

युक्रांद

वर्ष – ४ अंक – १ : २

मूल्य एक प्रति : १-०० रु.
वार्षिक : १२-०० रु.

युक्रान्द जुलाई : १९७२

मानसेवी

सम्पादक : अरविन्द कुमार

उप-सम्पादक :
आलोक पाण्डे, 'आकुल' राजेन्द्र

व्यवस्थापक :
स्वामी धर्म सरस्वती

सौज० सम्पादक : कनु शेठ

अ नु क्र म णि का

: पृष्ठ :

कृष्ण का दर्शन : एक दृष्टि	३	संकलन : मा योग मीरा, जूनागढ़
महत्वाकांक्षा : विराट की पिपासा	४	भगवान श्री की बोध कथाओं से
जीने की कला (एक प्रवचन)	५	संकलन : एन. जी. वखारिया
मुझसे क्यों पूछते हो ?	२७	स्वामी अगेह भारती
मेरी संन्यास यात्रा	३०	स्वामी दयाल भारती
मंत्र-विज्ञान और अजपा गायत्री (एक प्रवचन)	३६	संकलन स्वामी योग चिन्मय
"नव-संन्यास अंतर्राष्ट्रीय" आंदोलन	४०	अंतर्दृष्टि, उद्देश्य एवं कार्यक्षेत्र
लाओत्से सर्वाधिक सार्थक— वर्तमान विश्वस्थित में (एक प्रवचन)	४६	संकलन : स्वामी आनंद मैत्रेय, पटना

गीत-काव्य

कृतज्ञता	२६	स्वामी अमृत परमहंस
संन्यास-गीत	२९	साधु योग प्रीतम
Awakening	६८	'OHM'

स्वत्वाधिकारी प्रकाशक : अरविन्द कुमार, ७९०, राइट-टाउन, जबलपुर.
मुद्रण : अशेष प्रिंटर्स, ७८१, राइट-टाउन, जबलपुर. ☎ 2957

कृष्ण का दर्शन : एक दृष्टि

संकलन : *मा योग मीरा*
जूनागढ़

- कृष्ण कोरा अस्तित्व है ।
- सोचना हो, बोलना हो, तो कृष्ण से ज्यादा महत्वपूर्ण व्यक्ति खोजना मुश्किल है ।
- कृष्ण कलाकार नहीं हैं, कला ही हैं ।
- कृष्ण जैसे महत्वपूर्ण व्यक्ति समय से पहले पैदा होते हैं ।
- जीवन जैसा है, उसमें रत्ती भर फर्क करने की कृष्ण की इच्छा नहीं है ।
- कृष्ण के लिए सुख और दुख व्यर्थ है, कृष्ण को सब स्वीकार है ।
- आने वाले भविष्य के लिए कृष्ण सबसे ज्यादा सार्थक मालूम पड़ते हैं मुझे ।
- कृष्ण परमात्मा के प्रतीक हैं, अर्जुन मनुष्य का प्रतीक और दुर्योधन पशु का प्रतीक है ।
- कृष्ण न हिंसक हैं, न अहिंसक लेकिन यह बात तभी सत्य हो सकती है, जब आप कृष्ण के तल पर खड़े होंगे !
- 'गीता' का संदेश इतना ही है कि अपनी संभावनाओं को जानना, समझना, जीना ।
- कृष्ण कोई व्यवस्थित ढांचा नहीं दे रहे हैं । कहते हैं : 'जो है', उसमें पहले ही क्षण कूद जाओ ।
- कृष्ण अहंकार का निषेध नहीं करते हैं, कृष्ण की भाषा में 'मैं' का प्रयोग है; लेकिन 'मैं' कहीं भी नहीं है, क्योंकि 'मैं' इतना बड़ा हो गया कि विराट में समा गया और कृष्ण कह सके : अहं ब्रह्मास्मि ।
- बुद्ध को जो आखिरी घड़ी में दिखाई पड़ा है वह कृष्ण को पहली ही घड़ी में दिखाई पड़ गया है ।
- कृष्ण सदा ही सिद्ध हैं ! उनके जीवन में साधना है ही नहीं ।
- कृष्ण अकेले स्त्रियों के साथ ही नहीं नाचे— चांद-तारों के साथ, पशु-पौधों के साथ, पूरे जगत् के साथ नाचे हैं ।

बोध कथाओं से

महत्वाकांक्षा : विराट की पिपासा

● किसी ने पूछा : "महत्वाकांक्षा के सम्बन्ध में आपके क्या विचार हैं ?" मैंने कहा : "बहुत कम लोग हैं जो कि सचमुच महत्वाकांक्षी होते हैं। क्षुद्र से तृप्त हो जाने वाले महत्वाकांक्षी नहीं हैं। विराट को जो चाहते हैं वे ही महत्वाकांक्षी हैं। और फिर हम सोचते हैं कि महत्वाकांक्षा अशुभ है। मैं कहता हूं, नहीं। वास्तविक महत्वाकांक्षा बुरी नहीं है, क्योंकि वही मनुष्य को प्रभु की ओर ले जाती है।"

बहुत दिन हुए एक युवक से मैंने कहा था :

'जीवन को लक्ष्य दो और हृदय को महत्वाकांक्षा। ऊंचाइयों के स्वप्नों से स्वयं को भर लो। बिना एक लक्ष्य के तुम व्यक्ति नहीं बन सकोगे, क्योंकि उसके अभाव में तुम्हारे भीतर एकता पैदा नहीं होगी और तुम्हारी शक्तियां बिखरी रहेंगी। अपनी सारी शक्तियों को इकट्ठाकर जो किसी लक्ष्य के प्रति समर्पित हो जाता है, वही केवल व्यक्तित्व को उपलब्ध होता है। शेष सारे लोग तो अराजक भीड़ों की भांति होते हैं। उनके अन्तस् के स्वर स्व-विरोधी होते हैं और उनके जीवन से कभी कोई संगीत पैदा नहीं हो पाता। और जो स्वयं में ही संगीत न हो, तो उसे न शांति मिलती है और न शक्ति। शांति और शक्ति एक ही सत्य के दो नाम हैं।'

वह पूछने लगा : 'यह कैसे होगा ?'

मैं बोला : 'जमीन में दबे हुए बीज को देखो। वह किस भांति सारी शक्तियों को इकट्ठा कर भूमि के ऊपर उठता है ? सूर्य के दर्शन की उसकी प्यास ही अंकुर बनाती है। उस प्रबल इच्छा से ही वह स्वयं को तोड़ता है और क्षुद्र के बाहर आता है। वैसे ही बनो। बीज की भांति ही बनो। विराट को पाने को प्यासे हो जाओ और फिर सारी शक्तियों को इकट्ठा कर ऊपर की ओर उठो। और, फिर एक क्षण आता है कि व्यक्ति स्वयं को तोड़कर स्वयं को पा लेता है।'

● **जीवन के चरम लक्ष्य को, स्वयं को और सत्य को पाने को जो स्मरण रखता है, वह कुछ भी पाकर तृप्त नहीं होता।**

● संकलन : एन. जी. वरवारिया

● संपादन : 'आकुल' राजेन्द्र

जीने की कला

भगवान श्री द्वारा अहमदाबाद में दिया गया एक अमृत प्रवचन

●

मेरे प्रिय आत्मन्,

जीवन की कला क्या है— इस संबंध में कुछ भी कहना एक अर्थ में बहुत आश्चर्यजनक मालूम पड़ सकता हैं, क्योंकि हम सभी जीते हैं। लेकिन अकेला जी लेना जीवन को पा लेना नहीं है। जीवन कुछ और भी है; मात्र जी लेना नहीं। और उस जीवन का हमें कोई पता कभी भी नहीं चल पाता, यदि हम उसे खोजने ही न निकल जायं। जीवित हम हैं, लेकिन जीने की व्यस्तता में जीवन को पा लेने से चूक जाते हैं—उसका स्पर्श नहीं हो पाता—उसका पता ही नहीं चल पाता। अक्सर तो यही होता है कि जब मृत्यु द्वार पर खड़ी होकर दस्तक देने लगती है तभी हमें पहली बार पता चलता है कि जीवन था और गया। मैंने सुना है कि कुछ लोग मरते हुए ही जान पाते हैं कि जीते थे— जीवित थे। जब जीवन होता है तब हमारा ध्यान हजारों चीजों पर जाता है—एक हजार चीजों पर जाता है; सिर्फ जीवन पर नहीं जाता। जन्म के बाद हम स्वीकार ही कर लेते हैं कि जीवन मिल गया है—इससे बड़ी और कोई भूल नहीं हो सकती। जैसे कोई बीज समझ ले कि वह वृक्ष है, ऐसे ही हम जन्म पा लेने को ही जीवन समझके भूल में पड़ जाते हैं। बीज वृक्ष हो सकता है; है नहीं। और यह जरूरी नहीं कि वृक्ष हो ही जाय; बीज, बीज रहके भी मर जा सकता है। वृक्ष

●

जन्म को जीवन समझने की भूल, यह ऐसे ही है कि बीज अपने को वृक्ष समझ ले।

●

होना अनिवार्यता नहीं; सिर्फ संभावना है। लेकिन अगर बीज समझ ले कि वह वृक्ष है, तो फिर वह वृक्ष होने की सारी चेष्टा, सारा प्रयास, सारी यात्रा खो देगा। जरूरी क्या है ? जो मैं हूं, उसे पाने का सवाल नहीं है; जो भी हम स्वयं को समझ लेते हैं, उसे पाने की यात्रा बंद हो जाती है और जन्म के साथ बड़े से बड़ा इल्यूजन और भ्रम जो आदमी पैदा कर लेता है, वह यह है कि जीवन मिल गया।

जन्म जीवन नहीं है; जन्म केवल संभावना है— जीवन मिल भी सकता है, खो भी सकता है। **जन्म दोनों के लिये द्वार बन सकता है—जीवन पाने के लिये भी, जीवन खोने के लिए भी।** जन्म अपने में सिर्फ संभावना—'पासिबिलिटी'—है। जन्म कुछ भी नहीं है, सिर्फ एक अवसर, एक 'अपार्चुनिटी' है। हम खो भी सकते हैं, हम पा भी सकते हैं। अधिक लोग खो देते हैं। और खोने का जो बुनियादी कारण है, वह यह है कि वे जन्म को ही जीवन समझ लेते हैं—पैदा हो गये अर्थात् जीवन मिल गया। पैदा होके केवल संभावना मिलती है, जीवन नहीं। जीवन निर्मित करना होता है।

जन्म को जीवन मत मान लेना

इसलिये पहली बात तो आपसे यह कहना चाहता हूं कि सिर्फ होने को, मात्र ऐक्जिस्टेंस को जीवन मत समझ लेना। हम हैं, यह सच है; लेकिन यह होना किसी और बड़े के लिए द्वार बन सकता है। एक जन्म है, जो मां-बाप से मिलता है और एक जन्म है, जो हमें स्वयं अपने को देना पड़ता है। मां-बाप से मेरा जन्म उस दूसरे के लिए द्वार बने, जो हम अपने को देंगे, तब तो ठीक; अन्यथा भ्रम व्यर्थ हो जाता है। दौड़ते हैं बहुत, पहुंचते है कभी भी नहीं। श्रम भी बहुत करते हैं, फल कुछ भी नहीं आता। बीज, बीज रहके ही सड़ जाता है। हां, कभी-कभी कोई बीज वृक्ष बन जाता है। कभी-कभी किसी बीज में फूल आते हैं। कभी किसी बीज में सुगंध फैलती है। कभी कोई बीज वृक्ष बनके आकाश में दूर तक बांहों को फैला देता है—सूरज की किरणों को चूमता है—चांद के साथ नाचता है—पक्षियों के गीतों के साथ आन्दोलित होता है। कभी कोई वृक्ष आकाश को ओढ़ लेता है। अधिक बीज, बीज ही रहके मर जाते हैं।

मां-बाप से अपने जन्म के अतिरिक्त हमें स्वयं अपने को जन्म देना पड़ता है।

मनुष्य के बीज जब कभी ऐसे आकाश के फैलाव को उपलब्ध होते हैं, तो हम जो सिर्फ जीते हैं, उनकी पूजा में लग जाते हैं। एक बीज अगर दूसरे

खिले हुए, फूलों से भरे हुए वृक्ष की पूजा भी करे, तो क्या होगा ? एक बीज अगर सम्मान भी करे उस वृक्ष का, जिसमें फूल आ गए, तो क्या होगा ? और बाकी बीज मिलके किसी मरे हुए, कटे हुए वृक्ष का मंदिर बना लें, तो क्या होगा ? आदमी यही करता रहा है। बुद्ध को, महावीर को, क्राइस्ट को, कृष्ण को सम्मान, पूजा, आदर और उनके मंदिर, चर्च आदि, लेकिन यह स्मरण नहीं हमें कि वे सिर्फ वही बीज हैं जो हम भी हैं। लेकिन वे पूर्ण अवसर का उपयोग करके जीवन बन गये और हम बीज की तरह ही नष्ट होने की तैयारी कर रहे हैं। और अगर हम कुछ भी न करें, तो भी नष्ट हो ही जायेंगे। प्रतीक्षा बहुत देर नहीं चलेगी। बीज अगर वृक्ष न बना तो सड़ेगा। बीज अगर वृक्ष न बनने की यात्रा पर निकला, तो मृत्यु की यात्रा पर चलेगा। जो आदमी जन्म को अवसर नहीं बनाता जीवन के सृजन का, वह आदमी जन्म को अवसर बनाता है केवल मृत्यु की प्रतीक्षा का। दो ही तरह के लोग हैं—एक वे जो अपने जन्म को जीवन बनाने में सक्रिय हो जाते हैं, एक वे जो केवल मृत्यु की प्रतीक्षा करके रह जाते हैं। हम सब करीब-करीब मृत्यु की प्रतीक्षा करते हैं। रोज-रोज मौत करीब आती चली जाती है, और रोज-रोज मौत के करीब आने को हम जीवन कहते हैं। किस गणित से कहते हैं, समझना मुश्किल है। रोज हम मरते हैं, रोज मरने के करीब पहुंचते हैं।

जन्म अवसर न बने जीवन का तो वह मात्र मृत्यु की प्रतीक्षा का अवसर बन जाता है।

एक वर्ष गुजरता है और हम जन्म दिन मनाते हैं। मुश्किल है कहना कि वह जन्म का दिन मनाना चाहिए या मृत्यु का दिन ? उसे बर्थ-डे कहना चाहिए या डेथ-डे ? सोचेंगे तो वह मृत्यु का दिन मालूम पड़ेगा, क्योंकि एक वर्ष मौत और करीब आ गई और जन्म एक वर्ष और दूर छूट गया— एक वर्ष और हम मर चुके, एक वर्ष मरने की प्रक्रिया और हो गयी। ऐसा नहीं है कि एक दिन अचानक मौत कहीं से आ जाती है। मौत कोई बाहरी घटना नहीं है—कोई फॉरिन, कोई विदेशी घटना नहीं है कि आप चले जा रहे हैं और मौत आ गयी। मौत आपके भीतर विकसित होती रहती है, जन्म के दिन से ही विकसित होने लगती है। मौत भी एक 'ग्रोथ' है—एक विकास है। रोज हम मरने की तैयारी करते चलते हैं। रोज कुछ हमारे भीतर मरने लगता है—रोज हम बूढ़े होने लगते हैं। एक दिन मरने की यह प्रकिया पूरी हो जाती है। जिस दिन यह प्रक्रिया पूरी हो जाती है, हम कहते हैं, मौत आ

जन्म के दिन से ही मौत आपके भीतर विकसित होने लगती है।

गयी। मौत आ नहीं गयी, एक विकास था जो पूर्णता को उपलब्ध हो गया। और इसे ही हम जीवन कहकर रह जायें! यही जीवन है? यह रोज मरते जाना! यह ग्रेजुअल डेथ—यह धीरे-धीरे मरना! सत्तर साल लगते हैं एक आदमी को मरने में—एकाध मिनिट नहीं लगता, अस्सी साल लगते हैं। वैज्ञानिक और मेहनत करेंगे, तो सौ साल लगने लगेंगे—मरने में कितनी देर लगेगी, यह विज्ञान थोड़ा बड़ा कर लेगा, लेकिन यह मरने की प्रक्रिया है यह स्मरण में आना चाहिए।

जन्म के बाद, या तो हम जीवन की तलाश करेंगे, और या तो मरने की प्रक्रिया जारी रहेगी। हम जीवन की तलाश करेंगे, तो मरने की प्रक्रिया बंद नहीं हो जायेगी, लेकिन हमारे भीतर दो यात्रायें शुरू हो जायंगी। एक जो मर सकता है, वह मरने की यात्रा पर निकल जायेगा और एक जो परम जीवन को उपलब्ध हो सकता है, वह परम जीवन की यात्रा पर चल पड़ेगा। जिस व्यक्ति के भीतर दो यात्रायें चलने लगें—एक मरने की चलेगी उसे हमें चलाना नहीं पड़ता, वह अपने से चलती है और एक जिसे हमें चलाना पड़ता है। मरने की प्रक्रिया चलेगी, जो हमारे भीतर मरने वाला है वह धीरे-धीरे मरता चला जायगा। इस बीच उस अवसर को हम खो न दें और उसे जान लें, जो नहीं मरने वाला है। इस अवसर में, जबकि मरने वाला मर रहा है, हम उसकी झलक पा लें, उसे पहचान लें जो नहीं मरने वाला है, तो·· हमारे जीवन का अनुभव शुरू होगा।

धार्मिक आदमी वही है, जिसने मरने की प्रक्रिया को जान लिया।

साधारणतः हम मरते हैं, जीते नहीं, क्योंकि जीवन का हमें कोई अनुभव ही नहीं होता। इस जीवन का अनुभव कैसे करें? उसकी कला के क्या कारण होंगे? पहला चरण तो यह होगा कि जन्म को जीवन मत मानना। हम सब माने हुए बैठे हैं, इसलिए मैं जोर से कहना चाहता हूं कि जन्म को जीवन मत मानना। यह स्मरण रखना कि हम सब मर रहे हैं—जी नहीं रहे हैं। यह स्मरण बना रहे और छाप बन जाये भीतर प्राणों में, तो शायद एक नई यात्रा की तड़प पैदा हो। और वह यात्रा शुरू हो जाय। धार्मिक आदमी वही है, जिसने मरने की प्रक्रिया को जान लिया।

बुद्ध निकले हैं अपने घर से एक यूथ फेस्टिवल में—युवक महोत्सव में जाने को। बुद्ध का जन्म हुआ जिस दिन, उस दिन एक ज्योतिषी ने कहा कि यह लड़का या तो परम चक्रवर्ती सम्राट होगा, या फिर संन्यासी हो जायेगा। पिता मुश्किल में पड़ गये। कोई पिता बेटे को संन्यासी हुआ नहीं देखना चाहता।

सभी बाप, बेटे को चक्रवर्ती हुआ देखना चाहते हैं, क्योंकि बाप का अहंकार चक्रवर्ती नहीं हो पाया कम-से-कम बेटे से ही तृप्ति पा ले—बेटे के अहंकार से ही अपने को भर ले। सभी बाप, बेटे के भीतर अपने अहंकार की तृप्ति करने की चेष्टा में संलग्न होते हैं और इसलिए कोई बाप, बेटे से कभी तृप्त नहीं हो पाता, क्योंकि अहंकार बहुत बड़ा है, सब बेटे छोटे पड़ जाते हैं, वह तृप्त नहीं हो पाता। बाप घबड़ा गया है। तो उन्होंने कहा कि संन्यासी हो जायगा बेटा। कैसे रोकें इसे ? संन्यासी तो नहीं होने देना है। दूसरे का बेटा संन्यासी जाय, तो हम उसके चरण छूके नमस्कार कर आते हैं। हमारा बेटा संन्यासी होने लगे, तो हमारी मुसीबत शुरू होती है। बुद्ध के पिता भी बहुत संन्यासियों के चरण स्पर्श करने गये थे। आज पहली दफा उन्हें पता चला···कैसे रोकें ? चिन्ता में पड़ गये।

बुद्धिमानों से पूछा है—क्या करें ? बुद्धिमानों ने कहा—एक काम करें अपने बेटे को मृत्यु से परिचित न होने दें, बस; नहीं तो यह संन्यासी हो जायगा। बाप ने उपाय किये—बेटे को मृत्यु से अपरिचित रखने के। ऐसे महल बनाये जहां कोई बूढ़ा आदमी प्रवेश न कर सके, क्योंकि बूढ़े आदमी से मृत्यु की झलक आनी शुरू हो गई—मौत की छाया दिखाई पड़ने लगी—उसकी आंखों से, उसके हाथों से, उसके डगमगाने से मौत ने खबर दे दी कि मैं आती हूं। हिला दिया है मौत ने उसे। टिकेगा थोड़ी देर, तूफान और थोड़ा-सा सहेगा। जड़ें हिल गई हैं, कंपेंगी, कुछ दिन बाद गिरेगा अगली वर्षा में, कहीं इस वर्षा में ही। बूढ़ों का आना बन्द कर दिया। जहां बुद्ध रहते उस बगिया में फूल मुरझा जाते,तो मालियों को खबर कर दी गई कि मुरझाए फूल रात को ही अलग कर दिए जायं, कहीं बुद्ध को दिखाई न पड़ जायं। क्योंकि मुरझाया फूल देखके कहीं बुद्ध पूछने लगे कि फूल मुरझाते हैं, कहीं आदमी तो न मुरझा जाय ? सुन्दर से सुन्दर स्त्रियों के बीच घेर लिया है बुद्ध को—सारी सुख-सुविधाओं में खड़ा कर दिया है। लेकिन क्या यह संभव है कि जहां सब मरता हो वहां मरने के अनुभव से किसी को वंचित रखा जा सके ? बल्कि अगर मुझसे बुद्ध के पिता ने सलाह ली होती, तो मैं कहता कि तुम्हारा इंतजाम इस लड़के को संन्यासी बना ही देगा। बल्कि जैसे ही यह पैदा हुआ, इसे मरघट में रहने देना था, 'इम्यून' हो जाता। बूढ़ों को, खड़े हुए फूलों को, गिरते हुए पत्तों को, सूखे हुए पत्तों को, मुर्दों को, सबको देखने दो। देखकर आदी हो जायेगा तो प्रश्न नहीं

● जिंदगी कटघरों में बन्द नहीं हो सकती। उसके अनुभव से किसी को वंचित रखना असंभव है। ●

उठायेगा। गल्ती हो गई बुद्ध के पिता से। सब तरफ से व्यवस्था कर ली रोकने की। जिंदगी ऐसी चीज नहीं कि उसे हम कटघरों में बन्द कर लें।

बुद्ध जवान हो गये तब तक उन्हें पता नहीं चला कि कोई वृद्ध हो जाता है; क्योंकि उन्हें घर से निकलने नहीं दिया गया। लेकिन जवान हो गए, एक युवक महोत्सव हो रहा है, उसका उद्घाटन करने बुद्ध को जाना है। रथ पर सवार होकर निकले। रास्ते में बहुत व्यवस्था की गयी थी कि कोई बूढ़ा, कोई बीमार, कोई मुर्दा न दिखाई पड़े। लेकिन क्या करोगे ? सब रास्ते बुड्ढों से मुर्दों से, बीमारों से भरे हैं। एक बुड्ढा बुद्ध को दिखाई पड़ ही गया है। कितने ही इन्तजाम करो मौत कहीं न कहीं से झांकेगी ही, क्योंकि वह सब तरफ मौजूद है। बुद्ध ने अपने सारथी से पूछा—इस आदमी को क्या हो गया है ? बुद्ध ने कभी न पूछा होता—हम कभी नहीं पूछते, क्योंकि बचपन से ही देखते हैं कि यह हो रहा है। सारथी ने कहा—यह आदमी बूढ़ा हो गया है।

●

मृत्यु-बोध रोका नहीं जा सकता, क्योंकि मृत्यु चारों तरफ मौजूद है।

●

बुद्ध ने कहा—क्या मैं भी बूढ़ा हो जाऊंगा ? सारथी ने कहा— मैं कैसे कहूं ? और यह शोभा योग्य नहीं कि मैं कहूं कि आप बूढ़े हो जायेंगे; लेकिन इतना जिक्र करता हूं कि अपवाद कोई भी नहीं है—बूढ़ा सभी को होना पड़ता है। बुद्ध ने कहा रथ वापिस लौटा लो, क्योंकि बूढ़ा होना ही है तो बूढ़ा हो ही गया, देर-अबेर की बात है, रथ वापिस कर लो। फिर युवक महोत्सव में मैं भाग लेने कैसे जाऊं ? बूढ़ा हो ही गया। सारथी ने कहा— नहीं, यह ठीक नहीं, उचित नहीं है। पिता वहां राह देखते हैं। तो रथ आगे ले जाया गया। एक मुर्दा मिल गया है। कोई अर्थी लिये चला जाता है। बुद्ध ने पूछा—यह क्या हुआ ? सारथी ने कहा—यह उसके बाद का कदम है—वह जो बूढ़ा हो गया था, अब वह बुढ़ापा के बाद कोई आखिरी जो कदम उठता है, वह इस आदमी ने उठा लिया है। यह आदमी मर गया है। बुद्ध ने कहा—क्या मैं भी मर जाऊंगा ? सारथी ने कहा—अपने मुंह से मैं नहीं कह सकता इस तरह की बातें, जो अपशकुनपूर्ण हैं, अशुभ हैं, लेकिन अपवाद कोई भी नहीं। बुद्ध ने कहा—फिर वापिस लौटो। जब मर ही जाना है, आज, या कल, या परसों, सिर्फ समय की बात है, तो जीवन ने सारा अर्थ खो दिया। हम उसकी तलाश करेंगे जो न मरता हो। ऐसा भी कुछ है जो न मरता हो।

बुद्ध वापिस लौट आये, लेकिन हमारे रथ कभी वापस नहीं लौटते और हम अपने सारथी से कभी नहीं पूछते कि आदमी बूढ़ा हो गया है, मुझे तो बूढ़ा नहीं होना पड़ेगा ? सारथी हमारे पास भी है। हम अपने सारथी से

कभी नहीं पूछते, यह आदमी मर गया, मुझे भी मरना पड़ेगा ? बल्कि हम अपने सारथी को समझाए चले जाते हैं कि सब मरते होंगे, मेरे मरने का कोई आधार नहीं है। सब मरते होंगे, यह दूसरे के साथ घटना घटती है। मौत जो है वह सदा दूसरों के साथ घटती है। मैं अपने को सदा बचा लेता हूं, वह मेरे साथ कभी नहीं घटती। मैं आजाद हूं—प्रत्येक के भीतर ऐसा भाव है। जब वह किसी को मरते देखता है, तो कहता है—बेचारा ! दूसरे पर बड़ी दया करता है। और उसे यह स्मरण नहीं कि मौत उसकी भी होगी। जो आज दूसरों पर दया कर रहा है, कल कुछ लोगों को उसको भी बेचारा कहना पड़ेगा।

दूसरों पर दया करके अपने पर स्मरण करना हम चूक जाते हैं। कोई मरता है तो हम कहते हैं कि बेचारे के छोटे बच्चे हैं, पत्नी है; बड़ा बुरा हुआ। लेकिन कभी ऐसा स्मरण नहीं आता कि यह मौत का तीर जो उसकी तरफ उठ गया है, वह मेरी तरफ भी तैयारी कर रहा होगा। धनुष पर रखा जा चुका होगा—प्रत्यंचा खींच ली होगी। तीर चलता होगा, चल पड़ा भी होगा। आने में भी वक्त लग जाता है—तीरों को पहुंचने में भी समय लग जाता है। यात्रा में वक्त तो लगता ही है, और सच तो यह है कि तीर उसी दिन चल पड़ता है, जिस दिन हम पैदा होते हैं। शायद पैदा होने के क्षण में ही निर्णीत है भीतर कहीं, यह जो मेकेनिज्म, यह जो यंत्र हमें मिला है, वह कितनी देर चलेगा। जैसे हम घड़ी खरीद कर ले आते हैं, तो लिखकर दे देते हैं कि दस साल की गैरंटी है, बारह साल भी चल सकती है अगर बिल्कुल मत चलाओ। या पटक दो तो अभी भी टूट सकती है, वह दूसरी बात है। ये घटनाएं दुर्घटनाएं हैं। लेकिन ऐसी घड़ी दस वर्ष चलेगी, मशीन बनाने वाला कहता है। दस वर्ष का इंतजाम लिखा है— दस वर्ष चल जायगी।

जन्म लेते वक्त वह जो क्रोमोसोम, वह जो बीजाणु हमें निर्मित करता है, उसके भीतर की घड़ी सत्तर वर्ष, अस्सी वर्ष—विज्ञान थोड़ी सुविधायें बना ले, घड़ी काम चलाती जाय, श्रम कम हो, विश्राम ज्यादा हो जाय, तो जीवन थोड़ा लम्बा हो सकता है। गरीबी टूट पड़े, अकाल हो जाय, भारत में जन्म मिल जाय, तो जल्दी भी खत्म हो सकता है। लेकिन वे दुर्घटनायें हैं। उसको हिसाब में लाने की जरूरत नहीं है। लेकिन जन्म के क्षण में बीज की गैरंटी है कुछ भीतर और अब वैज्ञानिक कहते हैं कि कुछ भीतरी प्लानिंग है क्रोमोसोम में कि वो कितनी देर चलेगा। दो जुड़वे बच्चे पैदा होते हैं। दो तरह के जुड़वे बच्चे पैदा होते हैं—एक तो वे जो एक ही अण्डे में बड़े होते हैं

और एक वे जो दो अण्डों में बड़े होते हैं। दो अंडों में जो बड़े होते हैं, उन्हें जुड़वां कहना बहुत ठीक नहीं। ये दो ही बच्चे हैं, एक साथ पैदा होते हैं सिर्फ; जुड़वां नहीं है, सहयोगी हैं, कोआपरेटिव हैं। सिर्फ साथ पैदा हुए हैं, कोएक्जिस्टेंस हुआ है उनका, को-बर्थ हुई है—एक साथ जन्मे हैं, जुड़वे नहीं हैं, एक अण्डे में एक साथ दो बच्चे पैदा होते हैं, वे वस्तुतः जुड़वां हैं। इन जुड़वे बच्चों के बाबत जो अध्ययन हुए हैं, वह हैरान करने वाले हैं। चाहे एक को हिंदुस्तान में पालो और एक को चीन में, करीब-करीब जिंदगी में वे एक-सी बीमारियों से पीड़ित होंगे और करीब-करीब बीमारियों का वक्त भी समान होगा। अगर एक यहां टी० बी० से बीमार पड़ जाय पंद्रह वर्ष की उम्र में, तो वह जो चीन में बच्चा है, जिसकी इसको खबर नहीं, वह भी पंद्रह वर्ष की उम्र में टी० बी० से बीमार पड़ने की सम्भावना से भरा है। वह बीमार पड़ेगा। दिन-दो दिन की भूल-चूक होगी, वह बीमार पड़ जायेगा। और सबसे आश्चर्य की बात यह है कि दोनों बच्चे कहीं भी पाले जायं, इनके मरने में ३ माह से ज्यादा का फासला कभी नहीं होगा। कम-से-कम तीन दिन का फासला होता है, ज्यादा-से-ज्यादा तीन महीने का। इससे खयाल में आता है कि कुछ-न-कुछ जन्म के साथ इनब्रेड गैरंटी, वह जो क्रोमोसोम है—उसमें अन्दर से भरी हुई प्लानिंग, उसमें कुछ योजना लेके आदमी पैदा होता है। वह घड़ी तो चल रही है। तीर चल चुका है जन्म के साथ मरने का। मरना होगा। इस सम्बन्ध में आश्वस्त हो सकते हैं। उसमें कोई शक करने की अभी तो कोई जरूरत नहीं है।

एक बात सुनिश्चित है और कुछ भी जीवन में सुनिश्चित नहीं है—वह मृत्यु है। लेकिन, जो सबसे ज्यादा 'सरटेन' (Certain) और सुनिश्चित है, उसे हम सबसे ज्यादा दूर खड़ा कर देते हैं—उसे हम सोचते ही नहीं—उसे हम विचारते ही नहीं। हम शायद उससे बचते हैं, सोचने-विचारने से। क्योंकि, उसके सोच-विचार से चिंता पैदा होती है और साधारण चिंता पैदा नहीं होती। एक तो चिंता है रोटी कमाना, न कमा पाये, तो जो पैदा हो जाती है। एक चिंता है, जिस पत्नी को चाहे वह न मिल पाये, तो हो जाती है। एक चिंता है— जैसा मकान बनाना चाहे और न बन पाये, तो पैदा हो जाती है। एक चिंता है, जो हम जीते हैं, उसके बाहर से संबंधित होती है, जुड़ी है। एक और 'एंग्जाइटी' (Anxiety) है, एक और चिंता है, जिसको धार्मिक कहें—

अगर दुनिया धार्मिक होगी तो मरघट हम गांव के बाहर न बनायेंगे, ताकि बच्चा-बच्चा मौत को जान सके।

'रिलीजस' चिंता कहें, जो इस बात से पैदा होती है कि मौत आ रही है। अगर दुनिया धार्मिक होगी, तो मरघट हम गांव के बाहर न बनायेंगे, बीच में गांव के बनायेंगे, ताकि बच्चा-बच्चा जाने कि यह मौत आ रही है, रोज आ रही है। अभी तो बाहर से अर्थी निकलती है तो बेटे को घर, भीतर बुला लेती है मां कि अन्दर आजा, दरवाजा बंद कर, कोई अर्थी निकलती है। अगर मां समझदार हो तो जब अर्थी निकलती है, तो बेटे को बाहर ले आये और कहे कि अर्थी निकलती है और तेरी भी कहीं न कहीं तैयार होती होगी, आने में देर लग सकती है।

मौत का तीर तो चल चुका है। अगर हम इस एक ही डायमेन्शन में जी रहे हैं, एक ही आयाम में, जिस आयाम में, जिस रास्ते पर मौत चली आ रही है, अगर हम उसी में जी रहे हैं, तो हमें जीवन का कभी पता नहीं चलेगा। बहुत बार हम इस तरह जीते हैं और मरते हैं और हमें जीवन का पता ही नहीं चल पाता। क्या एक और डायमेन्शन भी है? क्या एक और यात्रा-पथ भी है? क्या कोई एक और आयाम भी है, जहां हमारी चेतना यात्रा करे? जहां मृत्यु न हो? क्योंकि जीवन वहां हो सकता है जहां मृत्यु न हो। जहां मृत्यु है वहां जीवन का सिर्फ भ्रम हो सकता है। जैसे पानी में किसी वृक्ष की छाया बनती हो। जहां पानी कंप जाता है छाया खो जाती है। खो जाना बताता है कि छाया रही होगी, जहां कंपन हो और सब खो जाता है। ऐसा लगता है कि जीवन कहीं और किसी तल पर है और इस शरीर में केवल प्रतिबिंब बन रहा है। शरीर जरा चूका कि प्रतिबिंब मिट जाता है। जीवन कहीं और है, यहां सिर्फ प्रतिबिंब बन रहा है। जरा चूक गए, मीडियम जिसमें प्रतिबिंब बन रहा है वह कंप गया, असमर्थ हो गया, टूट गया, यंत्र बिखर गया और प्रतिबिंब फौरन खो जाता है।

जीवन कहीं और है। शरीर में तो मात्र उसका प्रतिबिंब है, जो शरीर के जरा चूकने पर खो जाता है, मिट जाता है।

जैसे एक चांद झील में झलक रहा हो। कई बार तो ऊपर के चांद से भी झील का चांद सुन्दर लगता है। असल में प्रतिबिंब अधिक सुन्दर लगते हैं। जितना झूठ है उतना सुन्दर लगता है—जितना असत्य हो उतना सुन्दर लगता है। इसलिए तो कविताएं इतनी सुन्दर लगती हैं। इसलिए तो सपने इतने प्यारे और मीठे लगते हैं। और इसलिए कुछ लोग तो आंख बन्द करके सपने देखने में ही बिता देते हैं। लेकिन कितना ही सुन्दर हो चांद का प्रतिबिंब झील की छाती पर बना, प्रतिबिंब ही है, जो झील कंप जायगी,

भाप बनके उड़ जायगी, तो खो जायगा। और अगर हम इसको ही चांद समझ लें, तो समझेंगे कि चांद खो गया, चांद नष्ट हो गया। एक चांद और भी है, जो आकाश में है दूर जिसे हम शरीर कहते हैं, वह केवल मीडियम है, जीवन की अभिव्यक्ति का माध्यम है। वह मरेगा — उसकी घड़ी चल रही है, उसका यन्त्र चल रहा है—वह यन्त्र ही है। शरीर एक मेकेनिज्म ही है—बिल्कुल यन्त्र है, प्रकृति से पैदा हुआ यन्त्र है। आज नहीं कल हम भी वैसा यन्त्र बना लेंगे और हो सकता है प्रकृति से अच्छा बना लेंगे। क्योंकि प्रकृति को लाखों वर्ष लगते हैं प्रयोग करने में, तब सुधार कर पाती है; आदमी जल्दी कर लेता है। हम इससे ज्यादा अच्छा यन्त्र बना लेंगे, जो ज्यादा चले। यह हो सकता है, लेकिन वह यंत्र ही होगा। जो चल रहा है भीतर, जो प्रतिफलित हो रहा है, जो जीवन है, वह इस यन्त्र के साथ एक नहीं है, लेकिन उसका हमें कोई स्मरण नहीं होता। हम इस यंत्र के साथ ही जीके समाप्त हो जाते हैं। और मरते वक्त शायद समझते होंगे, मैं मर रहा हूं, क्योंकि हमने इस यन्त्र को ही अपना होना समझ रखा है।

जन्म से जीवन का माध्यम मिलता है—जीवन नहीं।

तो पहली बात आपसे कहना चाहता हूं—जन्म के साथ मिलता है माध्यम-मीडियम, इन्स्ट्रूमेंट-साधन जीवन का; जीवन नहीं। जीवन तो कहीं पीछे है और अगर हम इस माध्यम से ही उलझके व्यस्त हो गये तो उसको चूक जायेंगे जिसका यह माध्यम था और जिसे पाने, खोजने के लिए सार्थक हो सकता था। तो पहला सूत्र जन्म को जीवन नहीं मान लेना।

जो बीज होने से संतुष्ट हो जाता है, वह कभी वृक्ष नहीं हो सकता— एक गहरा असंतोष चाहिए जो है, उससे।

और जैसा जन्म से जीवन मिल जाय उससे सन्तुष्ट मत हो जाना। लेकिन हमें संतोष की बहुत बातें सिखाई गई हैं—संतुष्ट होने के लिए बहुत कहा गया है, जो है, उससे संतुष्ट हो जाओ। और जो आदमी 'जो है' उससे संतुष्ट हो गया, वह आदमी कोई भी काम नहीं करता—वह बीज होने से ही संतुष्ट हो गया। वह वृक्ष कभी नहीं हो पाता। एक गहरा असंतोष चाहिए "जो है", उससे। बुद्ध या महावीर या कृष्ण और क्राइस्ट या लाओत्से— इनको संतुष्ट आदमी समझने की भूल में मत पड़ जाना। इनसे ज्यादा असंतुष्ट, इनसे ज्यादा डिसकन्टेंट से भरे हुए मनुष्य पृथ्वी पर कभी पैदा नहीं हुए। हां, इनका असंतोष एक दिन इन्हें वहां ले गया जहां सब संतोष प्राप्त हो जाता है, वह दूसरी

बात है—वह फल है। वह असंतोष का अंतिम फल है। वह असंतुष्ट हो गये अपने से। इतने असंतुष्ट हो गए कि यह जो जीवन दिखाई पड़ता है, यह उन्हें जरा भी रसपूर्ण और अर्थ- पूर्ण न रहा। क्योंकि, जो छूट ही जाना है, जो बहुत बुद्धिमान हैं उनको दिखाई पड़ गया कि छूट गया। देर की बात है, धोखे का सवाल नहीं है। जो मिट ही जाना है, वह मिट ही गया। उसमें फासला सिर्फ टाइम का है, सिर्फ समय का है। और समय भागा चला जा रहा है। जल्दी वह घड़ी आ जायगी, बात पूरी हो जायगी। बहुत असंतुष्ट लोग—अपने से असंतुष्ट, जन्म से असंतुष्ट तथाकथित जीवन से असंतुष्ट एक दिन उस जगह पहुंच जाते हैं, जहां परम तुष्टि मिलती है। लेकिन परम तुष्टि मानकर जो बैठ गए हैं, वे कभी भी नहीं पहुंचते। वे अपनी परम तुष्टि में केवल नष्ट होते हैं, समाप्त होते हैं और मरते हैं। संतोष कर लेना स्युसाइडल है, आत्मघाती है। असंतुष्ट होकर एक दिन उस जगह पहुंच जाता है, जहां संतोष बरस जाता है सारे जीवन पर। करना नहीं पड़ता, आ जाता है। बनाना नहीं पड़ता, साधना नहीं पड़ता, निर्मित नहीं करना पड़ता—घट जाता है। वीणा बजने लगती है, बजानी नहीं पड़ती। फूल खिल जाते हैं उसमें, खिलाने नहीं पड़ते—बाजार से खरीदकर लाने नहीं पड़ते। इत्र नहीं छिड़कना पड़ता है उन पर। सुगंध उनकी स्वतः फैलने लगती है। उस दिन हैपनिंग है। संतोष हैपनिंग है—प्रयास नहीं। प्रयास तो सदा असंतोष है।

अंतिम उपलब्धि : असंतोष की अंतिम यात्रा पर संतोष के फूल खिलते हैं। उनकी बात ही करने की जरूरत नहीं है। वह अपने आप खिल जाते हैं। लेकिन सारी दुनिया को संतोष के पाठ ने मार डाला है, बिल्कुल मार डाला है। हर आदमी संतुष्ट है, जो है, उससे संतुष्ट है, इसलिए जो हो सकता है वह, नहीं हो पाता। यह तो हुई पहली बात—जन्म से सन्तुष्ट नहीं होना।

सिद्धांत को मत पकड़ लेना

दूसरी बात : जिस आदमी ने सिद्धांत पकड़ लिया वह उधार हो जाता है, वह आदमी कभी भी ऑथेन्टिक, प्रामाणिक नहीं रह जाता। किसी ने महावीर को पकड़ लिया तो चूक गया वह आदमी—जिंदगी उसे कभी नहीं मिलेगी। किसी ने बुद्ध को पकड़ लिया, तो मर गया वह आदमी—अब उसको जिंदगी कभी मिलने वाली नहीं है। क्योंकि बुद्ध के जीवन का अनुभव नितांत उनका अनुभव है, वह अनुभव आप नहीं दोहरा सकते। आपका अनुभव नितांत आपका होगा, कोई बुद्ध उसको दोहरा

आपका स्वयं का अनुभव न कोई दूसरा दोहरा सकता है, न आप किसी दूसरे का अनुभव दोहरा सकते।

नहीं सकता। जीवन का अनुभव पुनरावृत्त— रिपीट— नहीं हो सकता। जीवन का अनुभव सदा मौलिक है, ओरीजनल है। जब आपको होगा, तब वह ऐसा होगा जैसा न कभी हुआ, न कभी हो सकता है। सिद्धांत सिखाये जाते हैं, लेकिन अगर जीवन खोना है, तो ऐसे नियम, ऐसे सिद्धांत को मान-कर चलें। सिद्धांत बड़े धोखे की दुनिया है और सिद्धांतवादी आदमी से थोथा आदमी होता ही नहीं। झूठा ही आदमी होता है, वह असली आदमी होता ही नहीं, क्योंकि वह सिद्धांतों को पकड़कर जिंदगी को इतने ढांचे में ढाल लेता है कि जो असली है और किसी ढांचे में नहीं ढलता, वह चूक जाता है। सिद्धांतवादी आदमी पैटर्न में, ढांचे में मुर्दा हो जाता है। लेकिन हम सिद्धांत-वादी का बड़ा आदर करते हैं। हमारे मन में बड़ा भाव है कि सिद्धांत होने चाहिये कि जिंदगी को पाने के सिद्धांत क्या हैं? ध्यान रहे कि सिद्धांतों की कुछ बुनियादी खूबियां खतरनाक खूबियां हैं।

पहली तो खूबी सिद्धांतों की यह है कि सिद्धांत सीधे-साफ होते हैं और जिंदगी बड़ी जटिल है—सीधी-साफ बिल्कुल नहीं है। एक दार्शनिक के पास कोई आदमी गया। उसे कार चलाने का शौक था और वह भी तेजी से चलाने का शौक था। जब जिंदगी में और कोई तेजी न रह जाय, तो इस तरह की फिजूल तेजियां आदमी खोज लेता है। जब जिंदगी में कोई तेजी न हो, जिंदगी मुर्दा हो, तो फिर ड्राइव करने में भी तेजी का मजा ले लेता है। सभी बेईमान तेजियां हैं, कहीं पहुंचाती नहीं हैं। कितनी तेज कार चलाओ, कहां पहुंच जाना है? वह एक दार्शनिक से पूछने गया कि मुझे बड़ा डर लगता है। मैं बहुत तेज गाड़ी चलाता हूं। मैं आपसे पूछने आया हूं कि कोई खतरा तो नहीं? आप बड़े ज्ञानी हैं। उस दार्शनिक ने कहा— खतरा कोई भी नहीं है। सिद्धांत तुम्हें समझा देता हूं। अगर तुम तेज गाड़ी चलाओ तो दो सम्भावनायें हैं—या तो टकराओगे या नहीं टकराओगे। अगर नहीं टक-राये तो कोई खतरा नहीं है। अगर टकराये तो दो सम्भावनायें हैं—या तो चोट खाओगे या नहीं खाओगे। अगर नहीं चोट खाई तो कोई खतरा नहीं है। अगर चोट खाई तो दो संभावनायें हैं—या तो मर जाओगे या बच जाओगे। अगर बच गये तो कोई खतरा नहीं, अगर मर गए तो खतरे का सवाल ही नहीं है।

सिद्धांत सीधे और साफ होते हैं, परंतु जिंदगी बहुत जटिल है।

लेकिन जिंदगी इतनी सरल नहीं है। आदमी चोट खा सकता है और बच सकता है, लेकिन गणित के फार्मूले में सोचने वाले लोग ऐसा ही सोच

लेते हैं —ऐसा जिंदगी को तोड़ देते हैं काले अंधेरे में—'अ' और 'ब' में और दो हिस्से खड़े कर देते हैं। जिंदगी में न कुछ अंधेरा है न कुछ सफेद है, जिंदगी 'ग्रे' है। जिंदगी में न 'अ' और 'ब' है—जिंदगी में 'अ' और 'ब' एक ही चीज के दो नाम हैं। जिंदगी बहुत जटिल है, बहुत काम्प्लेक्स है, बहुत गहरा उलझाव है। इतनी सीधी-साफ नहीं है, जैसे गणित के फार्मूले होते हैं—जो दो और दो चार होते हैं। जिंदगी में कभी दो और दो चार होते भी हैं, कभी नहीं भी होते। जिंदगी सीधा गणित नहीं है, लेकिन सिद्धांत जिंदगी को बिल्कुल सीधा, साफ-सुथरा बना देते हैं और हमें बहुत जच जाते हैं कि सिद्धांत बिल्कुल ठीक है—कि पांच बजे सुबह उठ जाओ ब्रह्म मुहूर्त में, तो ब्रह्म ज्ञान हो जायगा; पर अभी तक किसी को हुआ नहीं।

वह खा लो, यह मत खाओ; यह कपड़े पहनो, यह मत पहनो; घर में रहो कि आश्रम में रहो; यह किताब पढ़ो, वह मत पढ़ो—सिद्धांत साफ-साफ खंडों में खड़ा कर देते हैं कि यह करो, यह मत करो। जिंदगी इतनी सीधी नहीं है, इतनी साफ नहीं है। और जो सिद्धांतों को पकड़ लेता है बाहर से, और सिद्धांतों में अपने को ढालने लग जाता है वह धीरे-धीरे आटोमेट हो जाता है, एक यंत्र हो जाता है, आदमी नहीं रह जाता। इसलिए डिसिप्लिड आदमी जिसको हम कहते हैं—बिल्कुल अनुशासित आदमी—डेड आदमी होता है, मुर्दा आदमी होता है, जिंदा आदमी नहीं होता। घड़ी पर चलता है, घड़ी पर उठता है, घड़ी पर बैठता। सब काम बंधे-बंधाये हैं। सब कुछ पटरी पर दौड़ता है, जैसे रेलगाड़ी के डब्बे दौड़ते हैं, कभी नीचे नहीं उतरते, बस दौड़ते चले जाते हैं पटरी पर। जिंदगी कोई पटरी नहीं है लोहे की।

अनुशासित — डिसिप्लिड —आदमी मुर्दा आदमी होता है, जो बंधी बंधाई पटरी पर मुर्दा रेल के डब्बे की तरह दौड़ता है।

जिंदगी नदी की धारा की तरह है; पटरियां नहीं हैं वहां— अनजान अपरिचित रास्तों से गुजरना पड़ता है, मार्ग भी बदल जाता है। वर्षा आती है, नदी भी बड़ी हो जाती है, सूख भी जाती है, समुद्र भी बन जाता है। सब है जिंदगी में। वह हम बंधी पटरियां नहीं हैं लोहे की और लोहे के डब्बे नहीं जो उन पर चलते हैं। लेकिन सिद्धांतवादियों ने जिंदगी को एक ढांचा, एक पैटर्न बनाने की कोशिश की है। उसकी वजह से बहुत लोग जिंदगी को चूक जाते हैं। खयाल ही नहीं रहता कि हम यह क्या कर रहे हैं? और जितना आदमी आदतों को मजबूत कर लेता है और सुनिश्चित हो जाता है—एक ढांचे में घूमने लगता है कोल्हू के बैल की तरह; रोज वक्त पर उठ जाता है;

रोज वक्त पर सो जाता है; वक्त पर किताब पढ़ लेता है; वक्त पर प्रार्थना कर लेता है; वक्त पर प्रेम कर लेता है। सब बंधा हुआ हिसाब है, सब वक्त पर और ठीक ढंग से, नियम से कर लेता है और सोचता है कि पा ली जिंदगी, तो बड़ी भूल में है।

जिंदगी बहुत अराजक है, अनार्किक है, बाढ़ की भांति है। जीवन ऐसी सुनिश्चित बात नहीं है, ऐसा लकीर के फकीर होकर कोई जिंदगी को नहीं पाता। सिद्धांत सदा सरल हैं और जिंदगी जटिल है। सिद्धांत हमेशा उधार हैं, दूसरे के हैं, और जिंदगी सदा अपनी है। और ध्यान रहे, जो एक आदमी के लिए अमृत है, वह सिद्धांत दूसरे के लिए अक्सर जहर हो जाता है, क्योंकि एक आदमी जैसा दूसरा आदमी नहीं है। अब महावीर को नग्न खड़ा होना आनंद-पूर्ण होगा, खड़े रहे उनकी मौज है, लेकिन कुछ पागल उनके पीछे दो-तीन हजार वर्ष से नग्न खड़े होने का अभ्यास कर रहे हैं।

जिंदगी बाढ़ की तरह अराजक, अनिश्चित एवं जटिल है और सिद्धांत सदा उधार तथा दूसरे के हैं।

मेरे एक मित्र हैं, वे भी नग्न-मुनि होने की चेष्टा में संलग्न थे। मैं एक बार उनके आश्रम के पास से गुजरता था, तो गाड़ी रोककर कहा कि दो मिनिट उनको देख आऊं; कहां तक गति हुई ! झोपड़ी जंगल में है। उनको पता नहीं कि कोई आता है। खिड़की से मैंने देखा, वे नंगे टहल रहे हैं। दरवाजे पर दस्तक दी, तो चादर लपेटकर आये। मैंने उनसे पूछा कि खिड़की से दिखा कि आप नंगे थे, अब आप चादर लपेटकर आये, बात क्या है ? उन्होंने कहा— मैं नंगे होने का अभ्यास कर रहा हूं ! पहले अपने ही कमरे में नंगे होने का अभ्यास करूंगा, फिर दो-चार मित्रों के बीच, फिर गांव में, फिर बड़े राज-पथ पर। मुश्किल पड़ती है नंगा होने में। मैंने उनसे पूछा कि कभी आपने सुना है कि महावीर ने नंगे होने का अभ्यास किया हो ? कब वस्त्र गिर गए, यह पता भी नहीं होगा। नग्नता आ गई होगी यह दूसरी बात है। एक आदमी इतना सरल हो गया होगा, इतना इनोसेंट हो गया होगा, इतना निर्दोष हो गया होगा कि वस्त्र की जरूरत न रही होगी, वह गिर गए होंगे किसी दिन और पहनना भूल गया होगा, यह दूसरी बात है। लेकिन यह आदमी कनिंग है, चालाक है; यह व्यवस्था कर रहा है—नंगे होने का अभ्यास कर रहा है। यह आदमी भी नंगा हो जायगा और हो सकता है कि महावीर से भी ज्यादा व्यवस्थित नग्न हो जायेगा। इसके नंगेपन में एक मेथड होगा, सिस्टम होगा, निश्चित ही इसके नंगेपन में एक ढंग होगा।

महावीर का नंगापन बिल्कुल बेढंगा रहा होगा—न सोचा होगा, न विचारा होगा; जिंदगी हो गई होगी सरल। कपड़े किसी दिन छूट गये होंगे, पाया होगा क्या जरूरत है, बात खत्म हो गई होगी— उसपर लौटकर सोचा भी नहीं होगा। इस आदमी का नंगापन बहुत व्यवस्थित होगा। अगर महावीर और इसका, दोनों का काम्पिटीशन कराया जाय, तो यह जीत जायगा। इसका अभ्यास, ट्रेनिंग उसने ली है। लेकिन कोई अभ्यास से नंगा हो सकता है? अभ्यास किस बात का कर रहे हैं आप? **कपड़ा जिसे छिपाता था, अब संकल्प से, अकड़ से, हिम्मत से, साहस से उसे छिपाने की कोशिश हो रही है।** और क्या कर रहे हैं? लेकिन छिपाने की कोशिश जारी रहेगी। और यह तो हो सकता है कि नंगा कोई अभ्यास से हो जायेगा, लेकिन यह सर्कस का नंगापन होगा, संन्यास का नंगापन नहीं हो सकता। महावीर के लिये नंगापन एक मौज रही होगी, नग्नता एक आनंद रहा होगा। बुद्ध को नहीं है मौज, तो कोई जरूरी नहीं है कि बुद्ध नंगे खड़े हों। बुद्ध को जो ठीक लगता है वे वैसा करते हैं। क्राइस्ट को जो ठीक लगता है वे वैसा जीते हैं। अपना-अपना जीवन है, अपनी-अपनी आत्मा है, अपना-अपना भीतर गहरा व्यक्तित्व है। सिद्धांत मार डालते हैं व्यक्ति को, क्योंकि सिद्धांत होते हैं दूसरे के व्यक्तित्व पर निर्मित और मैं बिल्कुल अलग आदमी हूं। तो मैं किसी को भी मानकर अगर आधार बनाकर जीने की कोशिश करूंगा, तो मैं नकली हो जाऊंगा, कार्बन कापी हो जाऊंगा। मैं असली नहीं रह जाने वाला हूं। ऐसे तो कार्बन-कापी ही पढ़ने में बड़ी तकलीफ होती है, फाड़ देने का मन होता है, इसका बहुत दुखद और उबाने वाला प्रभाव होता है। धीरे-धीरे मनुष्य को कार्बन-कापी होने का रोग पकड़ गया है। कोई किसी से पूछता है कि कैसा जीवन? किससे सीखें? किस महात्मा को पकड़ें, किस गुरु को पकड़ें—किस तीर्थंकर को, किस अवतार को? और पकड़ के हम कैसे जियें? कृष्ण, बुद्ध, महावीर के अपने-अपने व्यक्तित्व हैं। व्यक्ति-व्यक्ति को परमात्मा ने मौलिक व्यक्तित्व दिया है, इसी का नाम आत्मा है। मौलिक, ओरीजनल होने का नाम आत्मा है। बारोड, कापी होने में आत्मा खो देना है। जिसे आत्मा खोनी हो वह किसी का अनुयाई बने। और जिसे आत्मा पानी हो वह सावधान रहे; बचे—शास्त्र से, सिद्धांत से, गुरु से और किसी व्यक्ति से। तो दूसरी बात मैं आपसे कहता हूं—सिद्धांत और ढांचे से बचने की कोशिश करना, नहीं तो जीवन का पता नहीं चल पायेगा।

व्यक्ति-व्यक्ति को परमात्मा ने मौलिक व्यक्तित्व दिया है, इसी का नाम आत्मा है।

अतीत या भविष्य में नहीं—इस क्षण में जीना

तीसरी और अंतिम बात कहना चाहता हूं। हम सब जीते हैं अतीत में या भविष्य में—जो बीत गया उसमें, या जो नहीं आया उसमें, ये दोनों जीवन नहीं हैं। जीवन है अभी और यहां और मैं जिऊंगा अतीत में। कभी आपने खयाल किया कि आप वर्तमान में रहे हों? जब भी आप रहे होंगे कहीं और रहे होंगे। आज जियेंगे नहीं, कल जो जीवन बीत गया उसकी राख का हिसाब करेंगे—बीती जिंदगी की सारी स्मृतियों में खोये रहेंगे—लौट-लौटके वहीं देखते रहेंगे जो सब मर चुका। मौत को अगर खोजना हो तो अतीत में खोजें—अतीत में मृत्यु है, जीवन वहां से हट चुका है, जा चुका है। उसे क्यों सोच रहे हो? उसे सोचकर जो जीवन अभी है, उसे जानने से क्यों वंचित हुए जा रहे हैं? क्योंकि चित्त का एक नियम है कि वह एक ही जगह हो सकता है, इसलिए जो चित्त यदि भविष्य में है, तो वह वर्तमान में नहीं हो सकता। अतीत है मरा हुआ, भविष्य है अजन्मा। आने वाला या बीता हुआ कल पकड़ते हैं—आज में कोई जीता ही नहीं और जीवन है आज, अभी और यहीं इसी क्षण। मैं जीवित हूं अभी और स्मृति है पीछे। जीवन के ऊपर स्मृति की राख छा जाती है, जिसे हम टटोलते रहते हैं। क्या मिलेगा वह राख में? और जो अभी जन्मा नहीं, अजन्मा है अनजान है, जो हमें पता ही नहीं है कि क्या होगा कल, उसका विचार उसकी चिंता में लीन रहने से चूक जायेंगे आप—चूक जाते हैं। अभी— हियर एण्ड नाउ—वह जो क्षण है, उसको हम प्रतिपल चूकते चले जाते हैं। वह क्षण इतना बारीक है और हमारा अतीत और भविष्य का उलझाव इतना भारी है कि वह बारीक क्षण कब निकल जाता है हमें पता ही नहीं चलता। असल में जब वह निकल जाता है तब हमको पता चलता है, और जब निकल जाता है तब बेमानी हो जाता है—पता चलने का कोई मतलब नहीं रह जाता। या हमें तब पता रहता है जब वह आया नहीं होता, आ रहा होता है, और तब भी बेमानी है, क्योंकि वह आया नहीं होता।

जीवन है आज, अभी और यहां, किन्तु हम अतीत को कुरेदते हैं या भविष्य की चिंता में लीन रहते हैं।

अतीत और भविष्य में हम सब जीते हैं। हमारा मन का पेंडुलम अतीत से भविष्य, भविष्य से अतीत में डोलता रहता है। वह कभी रुक सकता नहीं वहां, जहां जीवन जिस वक्त है, जिस क्षण है। जापान में एक इनथा नाम के फकीर के पास एक आदमी गया, और उसने कहा—मैं जीवन जानना चाहता

हूं, मुझे कुछ रास्ता बतायें। वह फकीर थोड़ी देर आंख बन्द करके बैठा रहा, फिर उसने पूछा, किस गांव से आये हो ? उस आदमी ने कहा, जिस गांव से आता हूं, उसे बहुत पीछे छोड़ आया, उसकी बात करना फिजूल है। वह फकीर थोड़ी देर चुप रहा, फिर उसने पूछा, जिस गांव से आये हो उस गांव में चावल के दाम क्या हैं ? उस आदमी ने कहा आप बड़े पागल मालूम होते हैं, चावल के दाम कुछ न कुछ रहे होंगे, लेकिन उस बाजार में मैं अब नहीं हूं, उससे क्या लेना-देना ! आप फिजूल की बातें क्यों कर रहे हैं ? मैं पूछने आया हूं जीवन के बाबत। उस फकीर ने कहा कि मैं बताऊंगा तुमको जीवन, लेकिन पूछा इसलिए कि तुम अगर बताते कि फलां गांव से आता हूं और चावल के दाम बता देते, तो तुम्हें दरवाजे से बाहर निकाल देता और दरवाजा बंद कर लेता और कहता कि भाग यहां से। अभी तू उस गांव में रह रहा है, चावल के दाम की फिक्र कर रहा है, जहां से आ गया और जहां अब तू नहीं है। फिर जीवन को जानने का उपाय न था, लेकिन तू आदमी काम का मालूम पड़ता है— मालूम होता है तू वह पुल तोड़ देता है जिससे गुजर जाता है। उस आदमी ने कहा—वह टूट ही जाते हैं, तोड़ने का सवाल नहीं है, कोई पागल है जो उनको जोड़े रखता है मन में—अपने-अपने में वे सब टूट जाते हैं—जहां से हम गुजर जाते हैं, वह रास्ता मिट जाता है, वह दृश्य छूट जाता है, अब वह कहीं नहीं है, न ही उसे कहीं खोजा जा सकता; अब सिर्फ स्मृति में कुछ धागे रह जाते हैं।

उस फकीर ने ठीक पूछा·····हमें भी कभी अपने से ऐसा ही पूछना चाहिए कि कहीं जा चुकी बातों की स्मृतियों में तो नहीं खोये हुए हैं। उससे जिंदगी का पता कभी नहीं चलेगा, क्योंकि कल जब आयेगा तब हम फिर आगे के कल के बाबत सोचने लगेंगे और इसे खो देंगे जो आज है, अभी है— रोज "कल" आता है, लेकिन "आज" होके आता है; परंतु आज से हमारा कोई सम्बन्ध ही नहीं है ! वह चूक जाता है और इसी तरह पूरी जिंदगी वह जीता है धारा की तरह—हम डोलते हैं अतीत और भविष्य में।

बच्चे भविष्य में डोलते रहते हैं, बूढ़े अतीत में और जवान मुश्किल से कोई आदमी होता है। क्योंकि जवान का मतलब ही यह है—शरीर से तो सभी जवान होते हैं वह मैं बात नहीं कह रहा—जवान वह आदमी है या वह चित्त है, यंग माइंड, युवा चित्त वह है, जो अभी और यहां जीता है। और अगर कोई आदमी अभी और यहां जीना जान जाय, इस क्षण को पकड़ ले और डूब जाय, तो वैसा आदमी न कभी बूढ़ा होता है और न कभी मरता है, क्योंकि उस द्वार से उसे उसका पता चल जाता है, जीवन की उस धारा का,

जहां कोई मृत्यु कभी प्रवेश नहीं करती। यह क्षण—दिस वेरी मोमेंट—जीवन का द्वार है। यह क्षण जो हमारे पास से जा रहा है कांपता हुआ हवा के झोंके की तरह, पानी की लहर की तरह फिसलता, हम जरा चूके कि गया। यह अभी है, जो पीछे नहीं झुकता, आगे नहीं झुकता, अभी खड़ा हो गया है और झांकता है, उसे जीवन मिल जाता है। **वर्तमान में खड़े हो जाने का नाम जीवन है। इस क्षण में डूब जाने का नाम समाधि है। वर्तमान क्षण में उतर जाने से हम उस गंगा में उतर जाते हैं, जो जीवन की गंगा है। जीवन सदा वर्तमान में है। अतीत और भविष्य--एक मर चुका है और एक अजन्मा है।**

लेकिन हमें सदा आगे और पीछे जीने की योजना बताई जाती है। छोटे बच्चे खेलते दिखाई पड़ते हैं आपको, शायद थोड़े-बहुत वे निकट क्षण में जीते हैं, शायद इसीलिए ज्यादा जीवंत मालूम होते हैं, ताजे, फ्रेश और सुगंधित मालूम होते हैं—शायद इसीलिए उनकी आंखों से कोई खबर आती है, फिर धीरे-धीरे आनी बंद हो जाती है। लेकिन छोटे से छोटा बच्चा भी ठीक से वर्तमान में नहीं होता। एप्राक्सीमेटली —करीब-करीब वर्तमान में होता है। करीब-करीब होने से ही वह इतना ताजा है— जिंदगी की धारा के बहुत करीब। और जैसे-जैसे वह बूढ़ा होता चला जाता है, वैसे-वैसे जिंदगी की धारा से दूर होता चला जाता है; अतीत की शृंखला बड़ी होती जाती है।

भविष्य का भय और कल्पनायें—योजनायें बड़ी होती जाती हैं। और वह सब पकड़ लेता है वृद्ध आदमी—वृद्ध चित्त जीवन से सबसे ज्यादा दूर हो जाता है। बचपन में बच्चे का चित्त निकटतम होता है, वह भी वहां नहीं होता।

जीसस क्राइस्ट एक गांव से गुजर रहे हैं। भीड़ ने उन्हें घेर लिया है, क्योंकि एक पागल कुत्ता उन्हें काट खाता है। भीड़ चिल्लाती है कि पकड़ो उस पागल कुत्ते को— मार डालो उसे, यह न मालूम कितने लोगों को काटेगा। मेला है, जीसस को कोई जानता नहीं। जीसस के पैर से खून बह रहा है। वह बैठकर उस कुत्ते से प्यार कर रहे हैं। एक आदमी ने गौर से देखा, बाकी तो कुत्ते को गाली देने में लग गये थे—फिक्र छोड़ दी थी कि कुत्ते ने किसे काटा। तो उसने कहा यह आदमी कुत्ते से भी ज्यादा पागल मालूम होता है। कुत्ते ने काटा हुआ है, वह बैठकर कुत्ते के पास क्या कर रहा है? जीसस ने खड़े होकर कहा—तुमने देखा नहीं इस कुत्ते के दांत बहुत प्यारे हैं, बड़े सुन्दर हैं। फिर किसी आदमी ने भीड़ के पीछे से कहा कि मालूम होता है यह आदमी बेटा जीसस है; क्योंकि जमीन पर वही एक आदमी है कि कुत्ता उसे काट खाय, तो भी वह इस फिक्र में बहुत न पड़े कि क्या होगा और

कुत्ते के दांत देख सके जो अभी हैं और इस क्षण में जी सके। फिर भीड़ ने पूछा कि तुम कैसे इस अवस्था को उपलब्ध हुए ? तुम्हें फिक्र नहीं है कि कुत्ते ने काट लिया है ? उन्होंने कहा : यह घटना हो चुकी—अतीत हो गई बात—काटा जा चुका। खयाल पड़ता है—जीसस ने कहा—काटा जा चुका; अब कुत्ता काट नहीं रहा है—घटना हो चुकी, उसमें अब डूबना-उतराना अर्थहीन है। क्या होगा, वह देखा जायगा। अभी कुत्ता है और मैं हूं और इसके दांत बड़े प्यारे हैं, इतने प्यारे किसी आदमी के नहीं देखे।

किसी आदमी ने उनसे पूछा कि क्या इसी तरह प्रभु के राज्य में प्रवेश होगा जिसको आप मोक्ष कहते हैं ? जीसस ने कहा—निश्चित ही। जो बच्चों की तरह हैं, जो अभी और यहीं हैं, वे प्रभु के राज में प्रवेश कर सकते हैं। लेकिन बच्चे ? बच्चे के भी पैदा होते से ही पीछे-आगे का कंपन शुरू हो गया। पैन्डुलम अभी थोड़ा घूमता है, ज्यादा नहीं। मां दूध नहीं देती है, तो बच्चा पीड़ित है, परेशान है और कल उसने दूध दिया था, तो उसकी स्मृति भी है मन में कहीं। हो सकता है गर्भ में जो आराम मिला था बच्चे को, उसकी भी स्मृति हो। वहां आराम पूर्ण था गर्भ में — न कोई काम था, न कोई चिंता थी, न कोई दुनिया थी, न कोई झगड़ा था। सब कुछ चुपचाप चलता था—कुछ महीने तक तो सांस लेने की झंझट भी न थी—उससे आनन्दपूर्ण जगह अब तक हम नहीं बना पाये, हालांकि कोशिश तो बहुत करते हैं। जो मकान हमने बनाया है, वह गर्भ की ही कल्पना है। जो कोच हमने बनाये हैं, तकिये और गद्दे हमने बनाये हैं—वह गर्भ की ही कल्पना है। अभी जो अंतरिक्ष में यात्री गये हैं, उनके लिए जो केपसूल बनाया है, वह तो बिल्कुल गर्भ की ही डिजाइन पर है, जिससे कि उन्हें कोई तकलीफ न हो। मनोवैज्ञानिक तो कहते हैं कि मोक्ष का जो खयाल है, वह गर्भ की स्मृति है। यह खयाल है कि कोई ऐसा जगत होना चाहिए, जहां आराम ही आराम, आनंद ही आनंद हो, तो यह बच्चे के मन में छूट गई गर्भ की ही स्मृति है, जो उसके अनकान्शस में, अचेतन में रह गई—वह फिर से गर्भ खोज रहा है।

मोक्ष का जो खयाल है वह गर्भ की ही स्मृति है।

मनोवैज्ञानिक तो कहता है कि मोक्ष की धारणा के पीछे कहीं न कहीं गर्भ की स्मृति काम कर रही है। गर्भ की स्मृति भी होगी तो बच्चे का भी पेंडुलम घूमना शुरू हो गया। लेकिन फिर भी अभी कम घूम रहा है—अभी स्मृति कम है, अतीत कम है, अभी भविष्य का भी बोध कम है। अभी वह

क्षण में उतर जाने की कला जीवन में पहुंच जाने की कला है।

खेलता भी है, कूदता भी है, क्षण में लीन भी हो जाता है। लेकिन जैसे-जैसे स्मृति बढ़ती है, भविष्य का बोध बढ़ता है। हम क्षण में उतरना बन्द कर देते हैं। क्षण में नहीं उतरते तो जीवन नहीं मिलेगा। क्षण में उतर जाने की कला जीवन में पहुंच जाने की कला है।

तो तीसरा सूत्र आपसे कहता हूं : चौबीस घंटे क्षण में जीना बहुत मुश्किल है; पर जो चौबीस घंटे क्षण में जीने लगे—उसका नाम संन्यासी है। लेकिन हमारा संन्यासी भी नहीं जीता। वह भी इस फिकर में लगा रहता है कि आश्रम में कितने पैसे मिलेंगे, मिलेंगे कि नहीं मिलेंगे, यज्ञ होगा कि नहीं होगा, जनता होने देगी कि नहीं होने देगी। सब झंझटें हैं। वह सारे उपद्रव में जाता है। सारा उपद्रव वहां भी है—क्या होगा, क्या नहीं होगा। आगे-पीछे सब उपाय विचार के चलता है।

कोई चाहे तो धीरे-धीरे उस क्षण-क्षण जीने की दुनिया में भी प्रवेश कर पाता है, पा सकता है। लेकिन आज सामान्य जीवन में जीते हुए कम-से-कम दिन में कुछ क्षणों के लिए तो संभव है छोड़ देना अतीत को, छोड़ देना भविष्य को—कुछ क्षणों के लिए तो कोई भी संन्यासी हो सकता है— एक घड़ी भर को चुप होकर वहीं रह जाना, जहां हैं, जो भी हो रहा हो, वहीं रह जाना। बस यही बहुत है। एक दिन में नहीं हो जायेगा, लेकिन कोई अगर खयालपूर्वक रिमेम्बर करते-करते, स्मरण करते-करते कर ले, तो मन के पेंडुलम की गति धीमी होने लगेगी—लम्बी छलांगें लेना पेंडुलम बंद कर देगा और धीरे-धीरे एक दिन अचानक पेंडुलम खड़ा हो जायेगा। और क्षण में छलांग लग जाय तो जीवन क्या है, पता चल जाता है। उस दिन पहली बार शरीर के मेकेनिज्म से छुटकारा होता है; और आत्मा से परिचय होता है। उस दिन पहली दफे संसार ही नहीं परमात्मा भी सत्य हो जाता है। उस दिन पहली दफा मृत्यु समाप्त और अमृत के द्वार खुल जाते हैं। उस दिन पहली दफा अंधकार से, दुःख से, पीड़ा से, चिन्ता से, असंतोष से बाहर और एक शांति का, संतोष और आनंद का एक नया ही लोक मिलता है, जिससे हम बिल्कुल अपरिचित हैं। जहां से फूलों का सौंदर्य आता होगा, जहां से मनुष्य की आत्मा उतरती होगी, जहां से चांद-तारे रोशनी पाते होंगे, जहां से सारी जीवन की धाराएं अनंत रूपों में प्रगट होती होगीं—उस ओरीजनल सोर्स पर, उस मूल पर उतरना हो जाता है। उस मूल को कोई, कोई नाम दे—कोई कहे मोक्ष, कोई कहे प्रभु, कोई कहे निर्वाण, कोई कुछ भी कहे। बहुत समझ-

दार लोग कहते हैं, कुछ भी न कहो, चुप ही रह जाओ। वह है, बस इतना ही बहुत है।

ये तीन सूत्र मैंने कहे। समझने की बात कम है। किसी दिशा में प्रयोग करने की बात ज्यादा है। अगर जीवन को सिर्फ मरने की यात्रा नहीं बनाना है, और जीवन परम जीवन की मंजिल तक पहुंच सके ऐसी आकांक्षा है, अभीप्सा है, तो सोचना— अगर ठीक लगे थोड़ा, तो करना। करने से— कुछ करने से पहुंचना हो जाता है। हुआ है किसी एक का, तो क्यों किसी दूसरे का नहीं हो सकता ?

मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना इससे बहुत अनुग्रहीत हूं। और अन्त में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

●●

फूल फूला और फूला

- जहां तक बने, व्यक्ति को तौलने से बचना।
- दूसरे की मौजूदगी तुम्हारे 'मैं' को मजबूत करती है। इसलिए एकांत का उपयोग है कि तुम्हारा 'मैं' शिथिल हो सके।
- जिन्दगी इतनी गहरी है कि जल्दी निर्णय सिर्फ अवैज्ञानिक चित्त ही ले सकता है।
- विज्ञान की खोज का सही उपयोग राजनीति की मूढ़ता के कारण नहीं हो पाता।
- 'जन्म' को भगवान की कृपा मानते हैं पर बीमार होने पर डाक्टर के यहां जाते हैं। अगर यह बेईमानी चलती रही तो स्थिति आत्मघाती हो सकती है।
- समझदार आदमी खुद जानना चाहता है कि 'मैं कौन हूं'। नासमझ आदमी दूसरों को बताना चाहता है कि 'मैं कौन हूं'।
- यह भी मनुष्य का दुर्भाग्य है कि वह जो भी चाहता है उसी में सफल हो जाता है।

संकलन : *स्वामी अगेह भारती*

जबलपुर

●●

कृतज्ञता

पड़ा
एक बोझ की भांति
धरा पर
किसी ने पोंछ डाली
वह पुरानी धूल—
जिसमें लिप्त था...!
मधुर वाणी
केश बिखरे
हृदय कोमल
ले चला—
परिचित जगह से
अनजानी डगर—

रूपांतरित होने लगा
व्यक्ति, परिश्रम से
प्राणों में—
नवीनता आकण्ठ हो उठी...!
अहा..... ! अब तो
जीवन प्रवाहित हो उठा है
कण-कण से निकली—धन्यता
कृतज्ञता ने
कर दिया— मौन भंग
तब ... 'मैं'
कहां पत्थर रहा... ...?

● *स्वामी अमृत परमहंस*
नई देहली

मुझसे क्यों पूछते हो ?

स्वामी अनेह भारती

१९६८ के जनवरी के आस-पास की बात है। एक संध्या सवा आठ बजे मैं भगवान श्री के निवास पर गया। तब वे नेपियर टाउन में रहा करते थे और वह मकान भी सुन्दर लताओं से आच्छादित तथा कोना-कोना भांति-भांति के फूलों की सुगंध से भरा रहता था। कोई एक फूल की सुगंध तो इतनी 'डिवाइन' होती कि पागल ही कर देती। फाटक खोलकर जब मैं भीतर पहुंचा तो आचार्य श्री अकेले ही 'स्टडी' में बैठे कुछ पढ़ रहे थे। मैंने प्रणाम करते हुए कक्ष में प्रवेश किया। उन्होंने एक मधुर मुस्कान के साथ कहा : आओ, आओ, बैठो, कहो क्या हाल-चाल हैं तुम्हारे ?

मैंने कहा : भगवान श्री आज तो मैं बड़े मौज में आ रहा था पर रास्ते में एक मित्र मिल गये और उन्होंने कुछ बातें बताईं जिससे मैं बड़ा दुखी हूं

भगवान श्री ने पूछा : कहो, क्या बात हुई ?

मैंने बताया : जब मैं आ रहा था, रास्ते में एक मित्र से भेंट हो गई। वे रेलवे में गार्ड हैं। उन्होंने पूछा : कहां जा रहे हो ? मैं यहां अकेला ही आना चाहता था। अतः थोड़ा डरा कि वे भी न साथ हो लें। मगर कहता भी क्या ? अतः बता दिया कि आचार्य रजनीश जी के यहां जा रहा हूं। उन्होंने कहा, आज तो नहीं, पर किसी दिन मैं भी चलना चाहता हूं। मुझे उनसे एक प्रश्न पूछना है और वह केवल उन्हीं से पूछा जा सकता है। मैंने उनसे कहा कि जब भी चलना, पूछना आप ही, मगर प्रश्न क्या है यह तो मुझसे भी बता ही सकते हैं। हो सकता है आपका प्रश्न मेरा भी प्रश्न हो। इस पर उन्होंने बताया कि वे दो दिनों से भूखे हैं। खाने को कुछ भी नहीं है। क्या करें ? तो आचार्य जी यद्यपि उन्होंने मुझे मना किया था कि कभी वे स्वयं पूछेंगे मगर उन मित्र की हालत ने मुझे बहुत दुखी कर दिया है अतः उसकी चर्चा आपसे किए बिना न रहा गया।

भगवान श्री ने कहा : "आपका प्रश्न एक व्यक्ति का नहीं, समूचे देश का प्रश्न है। आपको १००–५० रुपये देकर सहायता की जाय तो क्या आपकी

समस्या हल हो जाती है ? और अगर आपकी समस्या हल हो भी जाय, तो क्या होता है ? भूखा तो सारा देश ही है !! हमारे पूर्वजों ने जो किया है उसका फल कौन भोगेगा ? और हम भी अगर नहीं चेते तो यही भोग आने वाली पीढ़ियों को छोड़ जायंगे। और वे भी यही प्रश्न पूछेंगी कि हम भूखे हैं, क्या करें ? यह देश १० वर्षों में पूर्ण आत्म-निर्भर हो सकता है लेकिन मैं तो कुछ कहता हूं तो आप लोग पत्र लिखते हैं कि ये सब कहना बन्द करो वर्ना गोली मार दूंगा। फिर ये प्रश्न मुझसे क्यों पूछते हो ? मैं आज बड़ा गुस्सा हूं [हालांकि आचार्य जी के मुखपर गुस्सा नहीं,करुणा और पीड़ा ही दीखती थी] यह प्रश्न मंदिरों के भगवानों से पूछो, यह प्रश्न करपात्री जी से पूछो जो गर्भ-निरोध का विरोध करते हैं और आपको भी ये बातें पसन्द आती हैं कि बच्चे तो ईश्वर की देन हैं। आप बच्चे पैदा किए जाते हैं और कहते हैं बच्चे तो ईश्वर की देन हैं। फिर उस ईश्वर से ही क्यों नहीं कहते कि हम भूखे हैं ? आप बच्चों के बाप हैं या दुश्मन ? फ्रांस ने १९३० में परिवार नियोजित कर लिया, उसकी जनसंख्या आज भी उतनी है जितनी १९३० में थी, आज वहां एक भी आदमी यह कहने को नहीं है कि हमें खाने को नहीं। लेकिन हम हैं बहुत बेईमान लोग ! बच्चे पैदा करने को तो ईश्वर की देन कहेंगे, और मरने को ? नहीं, बुखार भी आयेगा तो डाक्टर के पास दौड़े जायंगे। फिर नहीं कहेंगे कि यह भी ईश्वर की देन है। ...अभी मैं पटना गया था। वहां मैंने गंगा देखी जिसमें इतना पानी है कि ५० पटना सींचे जा सकें। लेकिन पटना में अकाल है। और अगर गंगा से पानी निकालना है तो गांधी के चर्खे से काम नहीं चलेगा, फिर मशीनें चाहिए। आप मशीन का भी विरोध करते हैं। बोध गया में ८–१० गज के नीचे पानी है। और वहां बुद्ध के समय में भी अकाल था, आज भी अकाल है। बारिश नहीं हुई तो अकाल पड़ गया। कुएं नहीं खोद सकते। सभी एक दूसरे पर दोष मढ़ते हैं, करना कुछ नहीं चाहते। इस तरह समस्या नहीं हल होगी। बेशर्मी की भी कोई सीमा होती है। रूस, अमरीका भी सतर्क हो गए हैं कि यह तो भिखमंगों का देश है। अगर ये इसी दर से बच्चे पैदा करते जायंगे तो हम इन्हें कब तक देते और खिलाते रहेंगे। और हमारे देश को अन्तर्राष्ट्रीय शिष्टता तक नहीं आती। उन्हीं का खाते हैं, उन्हें ही गालियां बकते हैं।

दरिद्रों को यहां नारायण कहा जाता है। जब दरिद्र को नारायण कहेंगे तो दरिद्रता कैसे जायगी ? नहीं, मैं कहता हूं दरिद्रता पाप है, धरती पर एक कलंक, एक धब्बा...! लूलों-लंगड़ों को संतानें पैदा करने का कोई भी अधिकार नहीं होना चाहिए। दया-ममता सब मूर्खताएं हैं। उनके साथ इतनी

ही दया काफी होगी कि उनके रहने व, खाने की सरकार व्यवस्था कर दे। दरिद्रता हमारे भाग्य का फल नहीं, हमारी मूर्खता का फल हैं। फिर भाग्य पर भरोसा किए बैठे रहो। क्यों कहते हो कि हम भूखे हैं ? यह सब हमारे पूर्वजों, ऋषि-मुनियों की करतूतों का फल है। उन्होंने कहा, यह संसार मिथ्या है, बस मोक्ष ही सत्य है...मोक्ष ..मोक्ष...फिर मोक्ष व स्वर्ग की दौड़ में हमने शरीर की ओर ध्यान ही नहीं दिया। शरीर को बिगाड़ ही लिया। अब मोक्ष की कामना क्यों नहीं करते ? और शरीर के लिए तो काम करना पड़ेगा। इस संसार को सत्य समझकर काम करना पड़ेगा।"

कुछ देर और बैठकर मैं चला आया हूं। और रास्ते भर मुझे लगता रहा है कि इस व्यक्ति के हृदय में कितनी करुणा है ! कितना दर्द है लोगों के लिए !! मगर सरकार बहरी है। सरकार ही नहीं, जनता भी बहरी है।

संन्यास–गीत

टंगे रह गये सब सम्बोधन शब्दों की खूंटी पर
और मौन में हंसते मैं तो नंगा लौट गया हूं

कितने ही सम्मान-स्तरों में तन-मन जकड़ दिया था
उड़ने को मन हुआ, जगत ने प्यास नहीं जगने दी
दिये प्रेम के मन्त्र महा, पर रेशम भी बन्धन था
मुझे जड़ा हीरों-पन्नों से, हवा नहीं लगने दी

कितने पहरेदार खड़े थे ड्योढ़ी, दरवाजे पर
पर उन सबकी आंख बचाकर चंगा लौट गया हूं

ढंका जगत की पर्तों से मैं, खुद को भूल गया था
निज को छीला प्याज-सदृश जब, सोता फूट पड़ा है
पिऊं रात-दिन, नहीं अघाऊं, अमृत तो अमृत है
नाच रहा मन मत्त नशे में, ऐसा घूंट चढ़ा है

कोई कर ले लाख जतन आकर्षित मन करने के
पर मैं जग की वैतरणी तिर गंगा लौट गया हूं

—साधु योग प्रीतम
प्राध्यापक, हिन्दी-विभाग,
राजकीय महाविद्यालय, भीलवाड़ा (राज.)

मेरी संन्यास यात्रा

मन के पार : उनकी भेदक दृष्टि

भगवान श्री का निवास-स्थान, गाडरवारा, २ जुलाई १९७१ के अपराह्न लगभग ३ बजे।

"दयाल, क्या इरादे हैं ?" आचार्य श्री की तीखी एवं पैनी दृष्टि मुझ पर पड़ती है।

"जो आज्ञा"—करीब-करीब मन ही मन कह पाया हूं।

और तभी कुछ ही क्षणों में बस इशारों-इशारों में काम हो गया। स्वामी निकलंक जी एक माला ले आये हैं और एक सादा प्लेन पेपर भी, नाम के लिए ('लैटर-हैड' बम्बई से नहीं आ पाये थे)।

आचार्य श्री ने पुनः पूछा है : " 'दयाल' का मतलब वही है न, सिन्धी में, जो ....." ('दयालु' का अर्थ होता है)।

'जी, हां !'—मैंने कहा।

"तब तुम्हारा नाम होता है—'स्वामी दयाल भारती', " और माला गले में डल चुकी होती है।

पुनः वही मुस्कान : "बहुत बढ़िया भाई।"

और, प्लेन पेपर पर नाम लिखकर मुझे देते हुए वे बोले थे : "लैटर-हैड पर बाद में ले लेना।" (और तब मुझे पता न था कि मानो वे कह रहे हों कि 'कच्चा सर्टिफिकेट' अभी ले लो—'पक्का' बाद में बनवा लेना।)

और.....आचार्य श्री अन्य मित्रों से वार्तालाप करने में व्यस्त हो चुके थे, मुझे दिक्कत में छोड़कर !

वस्तुतः मैं कुछ भी न कह पाया था—न 'हां', न 'ना'। फिर भी माला गले में थी और नाम हाथ में। और, मैं कहीं खो गया था थोड़ी देर के लिए—असमंजस की हालत में पड़ गया था मैं।

●●

'संन्यास'— 'तथाकथित संन्यासी के पाखण्ड' पर शायद आचार्य श्री द्वारा की गई गहरी चोट—तीव्र आलोचना का ही असर था मेरे मन पर। खैर जो भी हो.... लेकिन संन्यास अभी तक मजाक था मेरे लिए—बिल्कुल मजाक! समझता था कि 'बेवकूफों' के लिए है, यह शायद....और, वह मजाक एक दिन सच हो गया।

समझौते वाला समझदार मन

सुनता रहता था जबलपुर में और युक्रांद वगैरह में पढ़ता रहता था कि आचार्य श्री ने मनाली-शिविर से 'संन्यास' देना शुरू किया है। अब तक इतने-इतने संन्यासी हो चुके। फलां का नाम ये और फलां-फलां व्यक्ति का नाम यह .... इत्यादि-इत्यादि। जबलपुर के भी कई प्रेमी—कई उत्सुक मित्र, कोई पूना, कोई बम्बई जाकर संन्यास ग्रहण कर आये हैं। कुछ लोगों ने तो जबलपुर में ही मा आनन्द मधु के आगमन पर संन्यास ले लिया है।

मुझे बात अभी तक समझ में नहीं आई है। **हमारा समझौता करने वाला मन आचार्य श्री के 'संन्यास' से समझौता नहीं कर पाया है।** मनाली-शिविर के कोई एक माह पूर्व आजोल-शिविर भी हो आया था, लेकिन तब 'गेरुए-संन्यास' की कोई भनक न थी। आजोल से लौटकर बंबई, 'पंच-महाव्रत' प्रवचनों में शामिल हुआ था, लेकिन तब तक कुछ पता न था। उन्हीं दिनों सी० सी० आई० चेम्बर्स, बंबई में पहली बार आचार्य श्री से मिलने का 'सिस्टम' देख आया था—'शिव' और बंबई की 'तारा' के साथ। 'तारा' का पहला परिचय था आचार्य श्री से और वह अब तक इस बीच 'मा योग तारा' बन चुकी है और शिव—'स्वामी अगेह भारती'। अगेह जी से तारा के संन्यस्थ होने की खबर पाकर मैं प्रसन्न हुआ था, हालांकि मेरे स्वयं के मन में तब भी कई प्रश्न थे, संन्यास के बाबत—लेकिन उत्तर एक भी नहीं। उत्तर पाता भी कैसे, बिना संन्यास से होकर गुजरने के।

अभी संन्यास शुरू हुए कुछ ही दिन बीते होंगे, मैं मन ही मन मुस्कुराता रहता था, यह सोचकर कि आचार्य श्री द्वारा हम सबका यह कैसा उपहास! —यह कैसा मजाक!! जिन-जिन बातों को झुठलाया था—आलोचना की थी, वे ही गेरुए वस्त्र—वही माला! हमारी समझ के बाहर था यह सब।

ऐसे ही एक बार क्रांति दीदी (मा योग क्रांति) से चर्चा हो रही थी, जबलपुर में मेरे संन्यास के बाबत। शायद मैं छूट गया था जबलपुर के मित्रों

में अभी। अतः बातों ही बातों में मज़ाक करते हुए उन्होंने मेरा नाम रख भी दिया—'स्वामी दयाल भारती' (और वस्तुतः हुआ भी वही)।

वैसे, उन दिनों संन्यास तो अप्रिय लगता, किन्तु नया नाम 'दयाल भारती' प्रीतिकर लगने लगा था। स्वामी, संन्यासी, गुरु ... आदि से तो बहुत पहले से कोई चिढ़ सी पैदा हो गई थी। संन्यासियों के प्रति—तथाकथित पाखण्ड के प्रति कोई आदर नहीं रह गया था मन में। स्वाभाविक ही, उसे ओढ़ लेना मजाक था मेरे लिए। **'संन्यास' —'तथाकथित संन्यासी के पाखण्ड' पर कदाचित् शायद आचार्य श्री द्वारा की गई गहरी चोट—तीव्र आलोचना का ही असर था मेरे मन पर।** खैर, जो भी हो.....

'गेरुए-संन्यास' की खबर पाकर मजाकिया 'मूड' में यदा-कदा घर पर मैं चर्चा करता रहता कि अब तो मैं गेरुए वस्त्र ही पहनूंगा—बड़ा अच्छा रंग है। यों ही, 'बाम्बे डाइंग' के शो रूम में पहुंच गया एक बार अपनी बहिन के साथ, **सोचा एक ड्रेस बनवाकर 'प्रैक्टिस' किया जाय—प्रयोग किया जाय। शायद गेरुए के विज्ञान का पता चल जाय** (हालांकि मन नहीं मानता था)। बातों ही बातों में मैंने बहिन को एक युवा महिला की ओर इशारा किया था, जो क्रीम कलर में एक लुंगी पहने शो रूम से उतर रहीं थीं। मैंने कहा था कि अब तो एक दिन ऐसी लुंगी भी पहननी होगी, लेकिन गेरुए रंग में। लेकिन, जब कपड़े की पसंदगी का सवाल आया, तो शेड्स के ऊपर शेड्स ..मन कहता, यह भी तो गेरुए से मिलता-जुलता है...यह भी तो करीब-करीब...। और, अन्त में सफेद ग्राउन्ड पर 'आरेंज' से रंग की एक चौकड़ी-डिज़ाइन में कपड़ा खरीदा 'शर्ट' के लिए और 'ब्राउन' से रंग का 'पैन्ट'। .....मन कितना चालाक है !

इन्हीं सब बातों को होते-होते कोई ९–१० माह बीत गए हैं और आचार्य श्री से सामना नहीं हो सका है। आचार्य श्री होते बम्बई, पूना, अहमदाबाद...और मैं वहां जा पाने में असमर्थ। लेकिन, मिलने की उत्सुकता ज्यों की त्यों होती ही। कभी मन कहता, तू सामने भर जा—छूटेगा नहीं तू। जो गया है—संन्यास लेकर ही लौटा है।

●●

संन्यास दीक्षा : निश्चित क्षण

और, अंततः वह समय आ ही गया।

आचार्य श्री गाडरवारा आये हैं नानी के देहावसान पर। मुझे पता नहीं है। जबलपुर के प्रायः सभी मित्र होकर आए हैं— भगवान श्री से मिलकर। लेकिन, मुझे कोई भी पता नहीं उनके आने का।

अचानक ही मेरी भेंट जबलपुर की एक परिचित महिला से होती है, पूछती हैं : 'क्यों, तुम नहीं गए हो क्या, गाडरवारा—रजनीश से मिलने ?'

मैंने आश्चर्य से पूछा : 'क्यों, वे आये हैं क्या, गाडरवारा ?'

'हां, उसी दिन, जिस दिन मैं बंबई से बैठी हूं ट्रेन में, वे भी बैठे हैं, गाडरवारा के लिए।' और, वे कहने लगीं : 'मुझे तारा और उसकी मां छोड़ने आई थीं स्टेशन पर, तो एक ओर संन्यासियों की भीड़ दिखाई दी प्लेट फार्म पर और कीर्तन भी शुरू हो गया था, तभी पता चला था कि रजनीश जी भी उसी ट्रेन से गाडरवारा जा रहे हैं।'

मैं खुशी से नाच उठा था, भगवान श्री से मिलने की उत्सुकतावश और बस पहुंचा एक-दो मित्रों के पास उसी वक्त और तभी बात 'कन्फर्म' हुई। यह भी पता चला कि बस वे दूसरे ही दिन मेल से बम्बई प्रस्थान भी करेंगे। बस क्या था, घर आया, और अगले कुछेक घंटों बाद अगली गाड़ी से—गाडरवारा !

लेकिन, अभी तक संन्यास मजाक था मेरे लिए—बिल्कुल मजाक ! समझता था कि 'बेवकूफों' के लिए है, यह शायद। (जैसे कि मैं बहुत होशियार था।)

और भी कई-कई प्रश्न !

लेकिन, उत्तरों के पाने की अपेक्षा ऐसे ही लौटा— बिना प्रश्नों के उठाए, संन्यास में प्रवेश पाकर।

अब तो भगवान श्री वापिस बम्बई पहुंच चुके हैं और मैं यहां जबलपुर। मन में प्रश्न ज्यों के त्यों मौजूद थे। तब संन्यास पा लिया था, मन से बिना पूछे, बिना समझौता किए—ऊपरी तौर पर, मजाक के तौर पर !

लेकिन, अब तो लगता है, कभी किन्हीं क्षणों में कि 'काश ! आजोल-शिविर मनाली के बाद क्यों न हुआ ? ... अथवा, मैं मनाली ही क्यों न पहुंचा सीधे...! संन्यास में एक वर्ष और प्रगति हुई होती मेरी...!' लेकिन, यह सब कैसे संभव होता ?

●●

वह मजाक : सचमुच संन्यास

और, मैं तब 'बिज़नेस' में था। अतः मन किन्हीं प्रश्नों में उलझा रहता और समझौता न हो पाता सन्यास से।

संन्यास के कोई दो माह बाद सितम्बर के प्रथम सप्ताह में अपने किसी कार्यवश बंबई जाना हुआ। 'महावीर-वाणी' पर प्रवचन चलते थे, तब।

अब वह व्यक्ति वहीं कहां रहा, जो होटल से सूट-टाई पहिनकर, 'बैग' लेकर, सड़क पर निकलता—'मार्केट-विजिट' करता हो और एकाएक गेरुए के साथ ही माला गले में लटका ले !

भगवान श्री से मिला भी, किन्तु उनकी वही मधुर-मुस्कान : 'ठीक हो जायगा —सब ठीक हो जायगा।'

मेरा समझौता चाहने वाला मन भला कैसे मानता और सिलसिला वैसे ही चलता रहा।

और वह मजाक एक दिन सच हो गया।

इन्दौर में मण्डली के कार्यक्रमों के दौरान अपने निजी कार्य से पहुंचा था। मा आनंद मधु से मिलकर 'संन्यास और संसार के समन्वय के सम्बन्ध में' बातचीत करनी चाही है।

लेकिन, मा मधु शंकित दृष्टि से अर्द्धसंन्यासी के-से वस्त्रों में मुझे देखते हुए आवेश में आकर मुझसे पूछती हैं : "तूने तो संन्यास लिया है, न ? किस '.....' से संन्यास लिया है ? ?..."

तभी किसी मित्र ने रोका : "मा, क्या कहती हैं ?— जरा सम्हाल के !"

"अरे ! वही तो बुलवा रहा है !"—मा बोलीं।

तपाक से भीतर तमाचा पड़ा—"नहीं, 'बेवकूफ' मैं ही हूं— तभी तो संन्यास लिया है न !"

उसी दिन लौटकर इन्दौर की अनजान सड़कों पर अनजान लोगों के बीच पूरा-पूरा गेरुए एवं माला में, लेकिन आधुनिकता के वेश में घूमा हूं और उसी दिन पूरे गेरुए वस्त्र एवं माला के कमाल का पता चला है। संन्यास की यात्रा असल में वहीं से शुरू होती है मेरी।

●●

संन्यास : व्यक्ति की परम स्वतन्त्रता

अब वह व्यक्ति वही कहां रहा, जो होटल से सूट-टाई पहनकर—'बैग' लेकर, सड़क पर निकलता—'मार्केट विजिट' करता हो और एकाएक गेरुए के साथ ही माला गले में लटका ले ! और फिर, भागे नहीं दूर कहीं जंगलों में, पहाड़ों में; बल्कि डटा रहे बाजार में, होटल में, घर में, संसार में। तब, सच ही क्या संन्यास व्यक्तित्व रूपांतरण की कीमिया नहीं !

यह तो अब पता चलता है संन्यास के बाद। संन्यास के पूर्व मन कितना संकुचित था—कितना झिझकपूर्ण ! संन्यास के बाद मन कितना खुल पाता है—व्यक्तित्व कितना निखर पाता है !!

अब तो, पता चलता है संन्यास के उस 'अंतर्मुखी दृष्टिकोण' का भी जिसे हम सिर्फ बहिर्मुखी ही समझ पाते थे।

मन होता है, कह दूं सबको कि ले लो संन्यास और मुक्त हो जाओ!

लेकिन, कैसे ?

कल तक मैं भी तो उसी कारागृह में था।

लेकिन अब, मेरे लिए **संन्यास है व्यक्तित्व की परम-स्वतन्त्रता !**

संन्यास है मन के भटकाव से मुक्ति !

संन्यास कोई समझौता नहीं—है समाधान !

संन्यास है प्राणों को प्रेरणा—प्रभु की ओर उड़ान के लिए !

जबलपुर, जून '७२ —*स्वामी दयाल भारती*

●

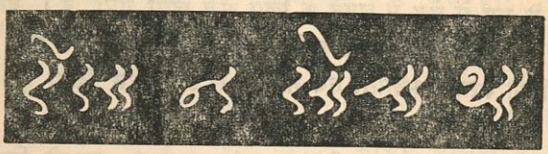

'मैं'....?

यह मेरा 'मैं' कहां से आया ? यह कहां से पैदा हुआ ? अगर यह मेरे ज्ञान से पैदा हुआ है, तब तो बड़े मजे की बात है, क्योंकि जिन्होंने भी स्वयं को जाना, उन्होंने 'मैं' कहना बन्द कर दिया—जिन्होंने स्वयं को पाया, उन्होंने 'मैं' को खो दिया। जिन्होंने स्वयं को नहीं पाया, वे कहते हैं—'मैं हूं।' यह 'मैं' कहां से आया ? यह आपके भीतर से नहीं आया; यह समाज ने पैदा करवा दिया। वह जो दूसरे हैं, उनके साथ व्यवहार करने के लिये आपको एक शब्द खोज लेना पड़ा है कि 'मैं हूं'; जैसे हमने नाम खोज लिया। बच्चा पैदा हुआ और उसे कुछ भी नाम दे देते हैं, वह नाम भीतर से नहीं आता—समाज उसे दे देता है। फिर वह जिंदगी भर उस नाम का बना रहेगा और इस शब्द के लिए लड़ेगा।

संकलन : *'आकुल' राजेन्द्र*

संकलन : स्वामी योग चिन्मय

मंत्र-विज्ञान और अजपा गायत्री

[माउन्ट आबू साधना-शिविर में प्रातः दिनांक २९ सितम्बर को भगवान श्री रजनीश द्वारा दिए गए प्रवचन का अन्तिम अंश। इस शिविर में "निर्वाण-उपनिषद" पर दिए गए १५ प्रवचनों का संकलन एक ४५० पृष्ठ की पुस्तक के रूप में प्रेस में छपने के लिए भेज दिया गया है। इन प्रवचनों में भगवान श्री ने साधकों एवं संन्यासियों के लिए साधना एवं योग के अनेक गूढ़ रहस्यों को अत्यन्त सूक्ष्मता एवं गहराई से उद्घाटित किया है।]

निर्वाण उपनिषद में ऋषि कहता है : "अजपा गायत्री विकार दण्डो ध्येयः।" गायत्री तो हम सब जानते हैं कि क्या है, लेकिन ऋषि कहता है : 'अजपा गायत्री'। जिस गायत्री को हम जानते हैं, वह तो जपी जाती है। वह तो 'जपा' है, 'अजपा' नहीं। यह ऋषि तो उल्टी बात कह रहा है। यह कह रहा है : 'अजपा गायत्री विकारदण्डो ध्येयः। **जिसे जपा ही नहीं जा सकता, उसमें ठहर जाना गायत्री है।**' जिसका कोई नाम नहीं, उसे जपोगे कैसे ? जिसका कोई शब्द नहीं, उसे जपोगे कैसे ? जिसका कोई रूप नहीं, उसे जपोगे कैसे ? सब छोड़कर, जप भी छोड़कर जहां पहुंचा जाता है वहां गायत्री है। वही मंत्र है, जहां मंत्र भी नहीं रह जाता। जहां प्रभु का नाम भी नहीं रह जाता, वहीं उसके नाम की उपलब्धि है।

हम अपने भीतर देखें, शब्द हम बोलते हैं, जब हम शब्द बोलते हैं, उसके पहले भी शब्द होता है एक पर्त नीचे। जब हम शब्द को सोचते हैं—बोला नहीं गया अभी शब्द, सिर्फ सोचा गया है। अभी बाहर प्रगट नहीं हुआ, अभी भीतर ही प्रगट हुआ—लेकिन सोचा गया शब्द जब भीतर प्रगट होता है, तो उसके पहले भी होता है। तब वह सोचा भी नहीं गया होता है। कई दफे

आपको लगा होगा कि किसी का नाम खो गया। याद है, लोग कहते हैं जीभ पर रखा है, फिर भी याद नहीं आता। बड़े अजीब लोग हैं। अगर जीभ पर ही रखा है तो और क्या दिक्कत है ? मगर उनकी कठिनाई मैं समझता हूं। उनकी कठिनाई सच्ची है, जीभ पर ही रखा है। उन्हें पक्का पता है कि याद है और याद नहीं आ रहा है। ये दोनों बातें एक साथ हो रही हैं। इसका मतलब यह हुआ कि उन्हें याद है, यह याद कहां होगा ? यह याद उनके विचार के तल के नीचे है। और विचार के तल में पकड़ में नहीं आ रहा है। और कई दफा अगर आप बहुत कोशिश करें—'इन टू मच हरी'-- सवार हो जायं खोजने के लिए, तो न मिलेगा। घबड़ा जायेंगे, परेशान हो जायेंगे, सिर पीट लेंगे। फिर भूल जायेंगे, छोड़ देंगे कि जाने दो। चाय पी रहे हैं और अचानक, वह जो नहीं मिल रहा था, निकल आया, और आ गया। यह कहां से आया, यह कहां था ? निश्चित ही यह विचार में तो नहीं था, नहीं तो आप पहले ही पकड़ लेते। यह विचार से नीचे के तल पर था।

तीन तल हुए—एक वाणी में प्रगट हो, एक विचार में प्रगट हो, एक विचार के नीचे अचेतन में हो। ऋषि कहते हैं, उसके नीचे भी एक तल है। अचेतन में भी होता है तो भी उसमें आकृति और रूप होता है। उसके नीचे एक तल है। उसे महाअचेतन कहें। जहां उसमें रूप और आकृति भी नहीं होती। वह अरूप होता है। जैसे एक बादल आकाश में भटक रहा है। अभी वर्षा नहीं हुई। ऐसा एक कोई अज्ञात तल पर भीतर कोई संभावित, पोटेंशियल विचार घूम रहा है। वह अचेतन में आकर अंकुरित होगा, चेतन में आकर प्रगट होगा, वाणी में आकर अभिव्यक्त हो जायगा। ऐसे चार तल हैं। गायत्री उस तल पर उपयोग की है जो अंतिम तल है, सबसे नीचे। उस तल पर अजपा का प्रवेश है।

तो जप का नियम समझ लें। अगर कोई भी जप शुरू करें—समझें कि राम, राम जप शुरू करते हैं या 'ओम्, ओम्', या 'अल्लाह, अल्लाह', कोई भी जप शुरू करें तो पहले उसे वाणी से शुरू करें। पहले कहें, राम, राम, राम—जोर से कहें। फिर जब यह इतना सहज हो जाय कि करना न पड़े और होने लगे—इसमें कोई एफर्ट (प्रयास) न रह जाय पीछे, प्रयत्न न रह जाय, यह होने लगे। जैसे श्वास चलती है, ऐसा हो जाय कि राम, राम चलता ही रहे तो फिर ओंठ बन्द कर लें। फिर उसको भीतर चलने दें। फिर न बोलें राम, राम— **फिर भीतर बोल चलें, राम, राम, राम।** फिर इतना इसका अभ्यास हो जाय कि उसमें भी प्रयत्न न करना पड़ें, तब इसे वहां से भी छोड़ दें, तब यह और नीचे डूब जायेगा। और अचेतन में चलने लगेगा—राम, राम, राम। आपको भी पता न चलेगा कि चल रहा है और चलता

रहेगा। फिर वहां से भी नीचे गिरा दिये जाने की विधियां हैं। और तब वह अजपा में गिर जाता है। **फिर वहां राम, राम भी नहीं चलता। फिर राम का भाव ही रह जाता है**—जस्ट क्लाउड लाइक, एक बादल की तरह छा जाता है। पहाड़ पर कभी बादल बैठ जाता है। धुआं-धुआं, ऐसा भीतर प्राणों के गहरे में अरूप छा जाता है। उसको कहा है ऋषि ने—अजपा। **और जब अजपा हो जाय कोई मंत्र, तब वह गायत्री बन गया।** अन्यथा वह गायत्री नहीं है।

और क्या है इस अजपा का उपयोग? इस अजपा से सिद्ध क्या होगा? इससे सिद्ध होगा विकारमुक्ति। विकार दण्डो ध्येयः। **इस अजपा का लक्ष्य है विकार से मुक्ति।** बहुत अद्भुत कीमिया है, केमेस्ट्री है इसकी। मन्त्र शास्त्र का अपना पूरा रसायन है। मंत्र शास्त्र यह कहता है कि अगर कोई भी मंत्र का उपयोग अजपा तक चला जाय, तो आपके चित्त से सब वासनाएं क्षीण हो जायेंगी। सब विकार गिर जायेंगे। क्योंकि **जो व्यक्ति अपने अंतिम अचेतन तल तक पहुंचने में समर्थ हो गया उसको फिर कोई चीज विकारग्रस्त नहीं कर सकती।** क्योंकि सब विकार ऊपर-ऊपर हैं। भीतर तो निर्विकार बैठा हुआ है, हमें उसका पता नहीं, इसलिए हम विकार से उलझे रहते हैं।

ऐसा समझें कि एक घाटी है अंधेरी, और सीलन से भरी और बदबू से भरी और जंगली जानवर हैं और सांप हैं और सब कुछ उपद्रव है। एक आदमी उस घाटी में है। वह बड़ा परेशान है कि सांपों से कैसे बचूं और सिंह न खा जाय और कोई हमला न कर दे और अंधेरा है और बदबू है और बीमारी है। फिर वह आदमी पहाड़ पर चढ़ना शुरू कर दे। फिर वह थोड़ा ऊपर पहुंचता है, सूरज की रोशनी मिल जाती है। वहां अंधेरा नहीं है। वहां सांप नहीं सरकते। घाटी में अब भी सरक रहे होंगे। पर वह आदमी घाटी से बाहर आ गया। वह आदमी और ऊपर चलता है, वह प्रकाश-उज्जवल शिखर पर पहुंच जाता है। जहां कोई भय नहीं। अब भी घाटी में सांप सरक रहे होंगे।

ठीक ऐसे ही जब कोई अजपा तक किसी ध्वनि को पहुंचा लेता है वह अपने भीतर उस गहराई में पहुंच जाता है जहां विकार नहीं जमते, वे सतह पर चलते हैं—ऊपर, ऊपर। हम वहीं लड़ते रहते हैं इसलिए परेशान रहते हैं। मन्त्र शास्त्र कहता है, वहां मत लड़ो, वहां से हट जाओ। तुम्हारे भीतर और भी बड़ी जमीन हैं। तुम्हारे भीतर और भी फैलाव हैं। तुम्हारे भीतर और गहराइयां हैं, और शिखर हैं, वहां हट जाओ। लड़ो मत। और एक दफा हट जाओ और अपने शिखरों को जान लो, फिर तुम लौटकर भी आ जाओगे उसी जगह पर तो तुम वही आदमी नहीं हो। **तब तुम अपने भीतर इतनी महिमा को जानकर लौटे हो कि तुम्हें क्षुद्र विकार पराजित न कर सकेंगे।** तब तुम अपनी इतनी शक्ति से परिचित होकर लौटे हो कि तुम्हें अंधेरा भय-

भीत न कर सकेगा, तब तुमने अपने स्वरूप का दर्शन किया है और अब तुम्हें कोई लुभा न सकेगा, पर एक दफा वहां तक हो आओ।

तो अजपा का उपयोग है विकारमुक्ति के लिए और **प्रत्येक विकार से मुक्ति के लिए विशेष-विशेष मंत्रों की व्यवस्था है।** अगर कोई आदमी क्रोध से पीड़ित है तो एक विशेष ध्वनि और मन्त्र का आयोजन किया जाता, उसको वह अजपा तक ले जाय तो क्रोध के बाहर हो जायेगा। काम-वासना से पीड़ित है, तो दूसरा मंत्र, भय से पीड़ित है, तो तीसरा। ध्वनियों के ऐसे समूह हैं जिनके माध्यम से आपके विकारों को चोट की जाती है और उसे तिरोहित किया जा सकता है। कुछ महाध्वनियां हैं। महाध्वनियां ऐसी औषधियां हैं जो सभी विकारों पर काम करती हैं। जैसे अभी हम एक ध्वनि का उपयोग कर रहे हैं— **हुंकार वह महाध्वनि है।** उसकी चोट इतनी गहरी है कि अलग-अलग विकारों से लड़ने की जरूरत नहीं है, अगर वह एक ही चोट अजपा तक पहुंच जाय तो सब विकार विसर्जित हो जाते हैं।

'अल्लाह' शब्द से हम सब परिचित हैं। 'अल्लाह' शब्द में भी 'हुंकार' का ही उपयोग है। और जब कोई साधक 'अल्लाह' का उपयोग करता है तो जो उपयोग बनता है वह होता है : अल्लाहु, अल्लाहु, अल्लाहु। फिर 'अल्' छूट जाता है और 'लाहु, लाहु, लाहु' बच रहता है। फिर 'ला' भी छूट जाता है। फिर 'हु, हु, हु' रह जाता है। और आखिर में 'हु' भी टूटता चला जाता है और अजपा बन जाता है। **जब 'हु' अजपा बन जाता है तो सब विकार तिरोहित हो जाते हैं।**

तिब्बती महामंत्र है : "ॐ मणि पद्मे हुं" वह 'हू, हू' का ही रूप है। 'ॐ' भी 'हू' जैसा काम कर सकता है। लेकिन अब शायद नहीं। बहुत सरल लोग हों तो 'ॐ' भी 'हू' का काम करता है, लेकिन बहुत जटिल लोगों पर काम नहीं करता। क्योंकि 'ॐ' की जो चोट है बहुत माइल्ड (हल्की) है। 'ॐ' की जो चोट है, वह बहुत माइल्ड है, 'हू' की चोट बहुत गहरी है। घाव गहरा है। 'ॐ' की चोट बहुत माइल्ड है। वह बहुत कम मात्रा की दवा है। वह उनके लिए उपयोग में लाई गई थी जो ज्यादा बीमार न थे। सरल चित्त के लोग थे, निर्दोष लोग थे, चालाक न थे, 'कनिंग' न थे, बेईमान न थे—सरल थे। 'ॐ' उनके लिए काफी था। होमियोपैथी की छोटी-सी मात्रा उनकी बीमारी को ठीक करती थी। अब एलोपैथी के बिना नहीं चल सकता। 'हू' एलोपैथिक है, 'ॐ' होमियोपैथिक है। 'हू' की चोट भयंकर है। गहरे से गहरे तक जाने वाली है। वह अजपा में उतर जाय तो 'हू' गायत्री बन जायगा और विकार विसर्जित हो जायेगा। कोई भी मंत्र गायत्री बन जाता है जब अजपा हो जाय। यह अर्थ है सूत्र का : "अजपा गायत्री विकार दण्डोध्येयः।"

• स्वामी योग चिन्मय

"नव-संन्यास अन्तर्राष्ट्रीय" आंदोलन

अन्तर्दृष्टि, उद्देश्य एवं कार्यक्षेत्र

(१) आमुख : (एक विश्व-व्यापी आध्यात्मिक आन्दोलन की जरूरत)

पूरी पृथ्वी पर आज मनुष्य पीड़ित है।

प्रत्येक व्यक्ति को प्रेरित करने, जागृत करने एवं आलोकमय करने के लिए एक विश्व-व्यापी आध्यात्मिक आन्दोलन आवश्यक है।

इसे क्रियान्वित करने के लिए अनेक-अनेक आयामों में आध्यात्मिक साधना एवं प्रयोगों को आधार बनाना होगा।

"नव-संन्यास अन्तर्राष्ट्रीय" आन्दोलन इस महत्वपूर्ण ऐतिहासिक कार्य को बिना किसी जात, पंथ, धर्म या राष्ट्र भेद के पूरा करने के लिए प्रस्तुत किया गया आह्वान है।

व्यक्ति के जागरण के लिए, समाज के सर्वांगीण विकास के लिए एवं धर्म के पुनरुत्थान के लिए भगवान श्री की प्रेरणा एवं साक्षीत्व में "नव-संन्यास अंतर्राष्ट्रीय" आन्दोलन का सूत्रपात आज से २ वर्ष पूर्व हुआ था।

आज तक दीक्षित हुए नव-संन्यासी एवं संन्यासिनियों की भारत एवं विदेशों में कुल संख्या २७०० है। विदेशों में संन्यासियों की कुल संख्या ७९ है और वे विविध देशों में इस प्रकार बंटे हुए हैं :

संयुक्त राष्ट्र अमेरिका–३८, इंग्लैंड–१०, इटली–९, फिलीपाइन्स–५, कनाडा–४, पश्चिम जर्मनी–३, डेन्मार्क–२, केन्या–२, जापान–१, फ्रांस–१, हालेण्ड–१, आस्ट्रेलिया–१, ग्रीस–१, स्वीडन–१।

(२) नव-संन्यास की धारणा और उसका अभिप्राय

नव-संन्यास अन्तर्राष्ट्रीय पृथ्वी के कोने-कोने से सत्य, परमात्म-साक्षात्कार एवं परम धर्म के खोज की अभीप्सा व प्यास से भरे हुए तथा इस लक्ष्य के लिए समर्पित हुए आध्यात्मिक-साधकों का एक विश्व-परिवार है।

वर्तमान मनुष्य सभ्यता व संस्कृति को एक नयी आध्यात्मिक दिशा देने के एक ऐतिहासिक कार्य में नव-संन्यासी सम्मिलित हुए हैं।

मनुष्य जाति की पीड़ा को आमूलतः विसर्जित करने के अभियान में नव-संन्यासियों ने अपना सब कुछ अर्पित किया है।

स्वयं के आध्यात्मिक जागरण से प्रारंभ करके वे पूरी पृथ्वी में प्रत्येक व्यक्ति को दीक्षित, शिक्षित, संस्कारित, संस्पर्शित करके झकझोरने व जगाने वाले हैं। इसके लिए हर संभाव्य आध्यात्मिक-साधना के प्रयोगों एवं पद्धतियों का नव-संन्यासी उपयोग करेंगे।

नव-संन्यास जीवन का उसकी समग्रता में एवं उसके समस्त आयामों में अहोभावपूर्वक स्वागत व आलिंगन करता है।

नव-संन्यास की आधार-शिला है—जीवन-स्वीकार। वह जीवन-निषेध पर आधारित समस्त प्रचलित प्रणालियों से असहयोग करता है।

नव-संन्यास व्यक्ति को प्रयोगों के द्वारा समस्त धर्मों के सारतत्व-अर्थात् शुद्ध धार्मिकपन में प्रतिष्ठित करता है। और वह इस कार्य को मनुष्य की आन्तरिक प्रफुल्लता से निकलने वाली एक साहसिक-यात्रा एवं लीला की तरह अनुभव करता है।

नव-संन्यास जीवन को अहोभाव से—एक आनन्द, एक उत्सव, एक अभिनय व एक लीला की भांति लेता है और प्रत्येक व्यक्ति को जीवन के आनन्द में, उसकी पूरी ऊंचाई व गहराई में डूबने के लिए प्रेरित करता है।

इस प्रकार नव-संन्यास पुराने धार्मिक लोगों एवं उनकी धर्म-प्रणालियों से जो एक गंभीरता, एक तनाव व एक भारी संघर्ष मात्र रह गये हैं, सर्वथा भिन्न व अनूठा है।

नव-संन्यास धर्म की एक तरल, गैर-गंभीर व आनन्द-आधारित नवीन अवधारणा है।

(३) नव-संन्यास : उद्देश्य और कार्यक्षेत्र

१. नव-संन्यास की धारणा एवं उपयोगिता का शिक्षण एवं प्रसार।

२. वैज्ञानिक साधना प्रणालियों के आधार पर धर्म का पुनरुत्थान।

३. एक वातावरण व सुविधा का निर्माण करना जिससे विश्व के सभी अध्यात्म-खोजी साधकों को उनके लिए निजी रूप से उपयुक्त गुह्य-धर्म-विज्ञान और साधना का मार्ग उपलब्ध कराया जा सके।

४. प्रत्येक व्यक्ति को उसके स्व-धर्म में प्रतिष्ठित करने के लिए उसे विशेष ध्यान की पद्धति सिखाना। ११२ ध्यान की विधियों का अलग-अलग व्यक्तियों के लिए उपयोग करना।

५. धर्म-पद्धति व साधना प्रणाली का जन्म व जाति से विशेष संबंध नहीं है। अतः वैज्ञानिक विधियों एवं योगिक प्रयोगों के द्वारा व्यक्ति के पिछले संस्कारों व पूर्व जन्म की साधना आदि की जांच करना। उसके बाद ही उसके व्यक्तित्व के ढांचे को उपयुक्त होने वाली ध्यान की पद्धति निश्चित करना।

६. विश्व की अनेक प्राचीन एवं विलुप्त हो रही ध्यान पद्धतियों को पुनरुज्जीवित एवं प्रतिष्ठित करना। कुछ प्रणालियां हैं : हिन्दू योग और तंत्र, जैन-साधना, बौद्ध-साधना, क्रिश्चियन, इस्लामिक, सूफी व हसीद साधना।

७. विभिन्न गुह्य-धर्म-प्रणालियों के बीच एक अन्तर्सेतु निर्मित करना एवं उनकी खो गई कड़ियों को, रहस्य-सूत्रों को पुनः जोड़ने में सहयोगी होना।

८. धर्म-साधनाओं की गुप्त व गुह्य विधियों को प्रगट करना एवं उन्हें वैज्ञानिक एवं आधुनिक जीवन के साहस एवं चुनौती के समक्ष स्थापित करना।

९. ध्यान की ११२ विधियों पर एक साथ, एक ही समय में कभी भी प्रयोग नहीं किया जा सका है। लेकिन वैज्ञानिक विकास ने विश्व को एक छोटा-सा परिवार बना दिया है और अनेक वैज्ञानिक सुविधाएं पहली बार सुलभ हो गई हैं। अतः अनेक साधना-पीठों, मठों, आश्रमों एवं प्रयोगशालाओं में सभी ध्यान की विधियों पर पुनः प्रयोग एवं शोध कार्य करना।

१०. विभिन्न धर्म-प्रणालियों के बीच समन्वय स्थापित करने के बदले प्रत्येक प्रणाली की शुद्धतम, मौलिक एवं वैज्ञानिक विधिधों को सामने लाकर उन्हें सुरक्षित करना एवं प्राणवान बनाना।

११. सिद्धांतों एवं विचारों के आधार पर नहीं, वरन् जीवन्त व्यक्तित्व को सामने रखकर धर्म व अध्यात्म के ऐश्वर्य व विभूतियों को प्रमाणित करना।

१२. किसी नये धर्म व परम्परा को जन्म न देकर पुरातन एवं सनातन धर्म-प्रणालियों को ही पुनरुज्जीवित करना।

(४) नव-संन्यास के प्रायोगिक आयाम एवं ठोस कदम

(क) संन्यास दीक्षा : संन्यास के पवित्र एवं दिव्य जीवन-यात्रा पर प्यासे लोगों को दीक्षित होने के लिए प्रेरित एवं तैयार करना। अब तक अनेक धर्मों के २७०० लोग नव-संन्यास में दीक्षित या पुनर्दीक्षित हो चुके हैं, जैसे : हिन्दू, जैन, बौद्ध, ईसाई, मुसलमान, पारसी, यहूदी, सिक्ख आदि।

(ख) आश्रमों का निर्माण : अन्तर्राष्ट्रीय, राष्ट्रीय, राज्य, प्रांत एवं जिला के तलों पर आधुनिक साधना केन्द्रों, आश्रमों, विहारों, विद्यापीठों व प्रयोगशालाओं का निर्माण करना जहां संन्यासी निवास, अध्ययन साधना व प्रयोग करेंगे।

इसमें नव-संन्यासियों को योग व अध्यात्म के अनेक गुह्य आयामों में प्रशिक्षित किया जायेगा। साथ इन आश्रमों में देश व विदेश से आनेवाले साधकों के लिए अलग से सामान्य एवं विशिष्ट पाठ्यक्रम व अभ्यासक्रम भी आयोजित होंगे।

निम्नलिखित नव-संन्यास आश्रमों (भगवान श्री रजनीश साधना आश्रम) ने अपना कार्य शुरू भी कर दिया है :

१—विश्व-नीड़ : बोरिया-महादेव, पोस्ट - आजोल, जिला—महेसाणा, गुजरात।

२—समर्पण : अमेरिका के न्यूयार्क शहर से १२० मील दूर उत्तर-पश्चिम में ६४ एकड़ जमीन पर स्थित। पता : समर्पण, बाक्स २२८, आर. डी.-१, अनाडिला, न्यूयार्क १३८४६, फोन : ६०७—३६६—६४८२।

३—प्रेम-नीड़ : पोस्ट-पिपरिया, जिला-होशंगाबाद, मध्यप्रदेश।

४—अमृत-धाम : जबलपुर से लगभग ३ मील दूर 'मदन महल' की सुरम्य पहाड़ियों में स्थित 'देवताल' स्थान पर निर्माणरत।

५—आनंद-शिला : बम्बई शहर से ३५ मील दूर, त्रिमूर्ति पर्वत के पास, कल्याण व अम्बरनाथ के बीच, १२५ एकड़ जमीन पर स्थित, निर्माणरत आश्रम। यहां विश्व-शीर्ष केन्द्र, (वर्ल्ड हेड क्वार्टर्स) एवं ध्यान-विश्व-विद्यापीठ निर्मित होने की संभावना है।

(ग) विश्व-व्यापी ध्यान आन्दोलन : नव-संन्यासियों के अनेक समूह देश-यात्रा एवं विदेश-यात्रा पर निकलेंगे जो विशाल जन समूहों को ध्यान के प्रयोग सिखाएंगे, एवं ध्यान-साधना के शिविर आयोजित करेंगे।

(घ) प्रभु-चिकित्सा (डिवाइन हीलिंग) आन्दोलन : नव-संन्यासियों का एक अलग समूह विविध प्रकार की प्रभु-चिकित्साओं के द्वारा लोगों की शारीरिक, मानसिक व आध्यात्मिक बीमारियों को दूर करेगा। प्रभु-चिकित्सा के तीन प्रमुख प्रकार होंगे : व्यक्तिगत प्रभु-चिकित्सा, सामूहिक प्रभु-चिकित्सा, सुदूर प्रभु-चिकित्सा।

यह कार्य भारत के अनेक शहरों में प्रारंभ हो चुका है और अनेक प्रभु-चिकित्सा-केन्द्र बहुत सफलतापूर्वक अपना कार्य कर रहे हैं।

(ङ) कीर्तन मंडलियां : विभिन्न देशी एवं विदेशी संन्यासियों के अनेक समूह देश एवं विदेशों का भ्रमण करेंगे। वे गायेंगे, नाचेंगे तथा प्रवचन देंगे। वे सामूहिक सक्रिय कीर्तन एवं त्राटक ध्यान के प्रयोग भी आयोजित करेंगे। वे जिज्ञासुओं से चर्चा करेंगे एवं उन्हें सुझाव देंगे।

वे भगवान श्री का विराट् साहित्य भी, जो अनेक भाषाओं में उपलब्ध है, लोगों तक पहुंचाएंगे।

इस प्रकार नव-संन्यासी भगवान श्री रजनीश के बहुआयामी जीवन-संदेश एवं धर्म-संदेश को प्रत्येक व्यक्ति तक पहुंचायेंगे।

अब तक छह कीर्तन मण्डलियां निर्मित हो चुकी हैं जिन्होंने गुजरात, राजस्थान, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश और पंजाब आदि प्रान्तों का विस्तृत दौरा किया है। उन कीर्तन मंडलियों के नाम इस प्रकार हैं :

(१) **स्वामी चैतन्य भारती कीर्तन मण्डली**
(२) **स्वामी महेश योगी कीर्तन मण्डली**
(३) **मा योग तरु कीर्तन मण्डली**
(४) **मा योग शिवानी कीर्तन मण्डली**
(५) **स्वामी नरेन्द्र बोधिसत्व कीर्तन मण्डली**
(६) **स्वामी वैराग्य अमृत कीर्तन मंडली**
(अभी-अभी यह मंडली उत्तरप्रदेश की यात्रा पर निकली है)

(च) पुस्तकों एवं पत्रिकाओं का प्रकाशन

"नव-संन्यास अन्तर्राष्ट्रीय" आन्दोलन की सहयोगी एवं सांस्कृतिक संस्था **"जीवन जागृति आंदोलन"** भगवान श्री रजनीश के प्रवचनों की पुस्तकाकार में प्रकाशित करती है। विराट साहित्य अब तक प्रकाशित हो चुका है। साहित्य मूलतः हिन्दी व अंग्रेजी भाषाओं में है। उसका अनुवाद अनेक भारतीय भाषाओं में उपलब्ध है; जैसे, गुजराती, मराठी, पंजाबी, सिंधी आदि। ग्रीक भाषा में दो पुस्तिकाएं एथेंस से प्रकाशित हुई हैं। अंग्रेजी साहित्य का आजकल इटालियन, डेनिश व जर्मनी भाषाओं में भी अनुवाद किया जा रहा है।

जीवन जागृति आन्दोलन तथा नव-संन्यास अन्तर्राष्ट्रीय आन्दोलन निम्नलिखित पत्रिकाएं भी प्रकाशित करता है :

(१) **संन्यास** : एन. एस. आई. की अन्तर्राष्ट्रीय आध्यात्मिक द्वै-मासिक पत्रिका, अंग्रेजी भाषा में, वार्षिक शुल्क १८ रुपये, बम्बई से प्रकाशित।

(२) **ज्योति शिखा** : हिन्दी भाषा में प्रकाशित एक त्रैमासिक पत्रिका, वार्षिक शुल्क ८ रुपये, बम्बई से प्रकाशित ।

(३) **युक्रान्द** : हिन्दी मासिक पत्रिका, वार्षिक शुल्क १२ रुपये, जबलपुर से प्रकाशित ।

(४) **ॐ (ओऽम्)** : गुजराती भाषा में बम्बई से प्रकाशित एक साप्ताहिक पत्रिका । वार्षिक शुल्क १२ रुपये ।

(५) **योग दीप** : मराठी भाषा में पूना से प्रकाशित, एक पाक्षिक पत्रिका, वार्षिक शुल्क ५ रुपये ।

(६) **तथाता** : गुजराती भाषा में अहमदाबाद से प्रकाशित, मासिक पुस्तिका माला, वार्षिक शुल्क १० रुपये ।

(छ) उत्पादन एवं लोक-सेवा कार्य : 'नव-संन्यास अन्तर्राष्ट्रीय' के अपने औद्योगिक उत्पादन केन्द्र, कृषिकार्य, कालेज, स्कूल, छात्रावास, अस्पताल, प्रसव व मातृ केन्द्र, प्रिंटिंग प्रेस इत्यादि स्थापित किये जायेंगे । जिसमें नव-संन्यासी अपनी-अपनी क्षमता के अनुसार ४ या ६ घंटे प्रतिदिन उत्पादन श्रम करेंगे ताकि वे आर्थिक रूप से पूर्ण स्वावलम्बी बन सकें ।

(ज) अन्तर्राष्ट्रीय ध्यान विश्व-विद्यापीठ : ध्यान की ११२ विधियों पर एवं परा-मनोविज्ञान, योग-विद्या एवं धर्म के अनेक गुह्य आयामों पर अभ्यास एवं शोधकार्य के लिए एक विश्व-केन्द्र का निर्माण किया जानेवाला है । इस विश्व-विद्यापीठ के कुलपति, उपकुलपति, महामंत्री, आचार्य, शिक्षक एवं अन्य सभी कार्यकर्ता नव-संन्यासी ही होंगे ।

इस विश्व-विद्यापीठ की अनेक शाखाएं महाविद्यालयों, आश्रमों एवं ध्यान-केन्द्रों के रूप में अपना कार्य करेंगी ।

इस विश्व-विद्यापीठ में हुए शोध कार्यों की उपलब्धियों का 'नव-संन्यास अन्तर्राष्ट्रीय' आन्दोलन के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए उपयोग किया जायगा ।

(झ) नव-संन्यासियों की नियुक्तियां : 'नव-संन्यास अन्तर्राष्ट्रीय' आन्दोलन के विराट कार्य को सुचारु रूप से चलाने एवं एक तरल व्यवस्था देने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय, महाद्वीपीय, राष्ट्रीय, राज्यीय एवं जिला के तलों पर नव-संन्यासियों को भगवान श्री रजनीश द्वारा अध्यक्ष, उपाध्यक्ष एवं महामंत्री के पदों पर नियुक्त किया गया है ।

भगवान श्री रजनीश, साधना आश्रम : विश्व-नीड़, प्रेम-नीड़ और समर्पण के लिए कुलपति, उप कुलपति व महामंत्री के पद पर भी नव-संन्यासी एवं संन्यासिनी नियुक्त किये गये हैं । ●●

लाओत्से | सर्वाधिक सार्थक—वर्तमान विश्व-स्थिति में

संकलन : स्वामी आनन्द मैत्रेय, पटना

[चीन में हुए संत लाओत्से ने अपने समस्त अनुभवों को सूत्र रूप में लिखा है। वे सूत्र "द बुक ऑफ ताओ" या 'ताओ तेह किंग' नामक एक छोटी-सी पुस्तिका के रूप में अंग्रेजी में अनुवादित हुए हैं। ये सूत्र गीता, उपनिषद, बाइबिल, कुरान आदि ग्रंथों की कोटि के हैं।

'अमृत अध्ययन वर्तुल' नामक एक सप्त दिवसीय मासिक सत्संग योजना के अंतर्गत भगवान श्री रजनीश के ४३ प्रवचन इन सूत्रों पर बम्बई में हो चुके हैं। इन प्रवचनों में केवल एक चौथाई सूत्रों की विस्तृत व्याख्या हो सकी है।

प्रथम २२ प्रवचनों का संकलन लगभग ७०० पृष्ठों के एक ग्रंथ के रूप में "ताओ-उपनिषद" के नाम से प्रेस में छपने के लिए भेजा जा रहा है। प्रस्तुत सामग्री ८ नवम्बर, १९७१ को हुआ २२ वां प्रश्नोत्तर प्रवचन है।

इस प्रवचन से "ताओ-उपनिषद" की एक झलक आपको मिल सकेगी ऐसी आशा है। —चिन्मय]

●

प्रश्नकर्त्ता : भगवान श्री, वे क्या आशाएं व दूर-दृष्टियां हैं, जिनके कारण लाओत्से की पच्चीस सौ वर्ष पुरानी धर्म शिक्षाओं को आज पुनर्जीवित करने की प्रेरणा आपको हुई है ?

भगवान श्री : लाओत्से ने जो भी कहा है वह, पच्चीस सौ साल पुराना जरूर है। लेकिन एक अर्थ में वह इतना ही नया है, जितनी सुबह की ओस की बूंद नई होती है। नया इसलिए है कि उस पर अब तक प्रयोग नहीं हुआ।

नया इसलिए है कि मनुष्य की आत्मा उस रास्ते पर एक कदम भी अभी नहीं चली। **रास्ता बिलकुल अछूता और कुंवारा है।** पुराना इसलिए है कि पच्चीस सौ साल पहले लाओत्से ने उसके सम्बन्ध में खबर दी। लेकिन, नया इसलिए है कि उस खबर को अब तक सुना नहीं गया। और आज उस खबर को सुनने की सर्वाधिक जरूरत आ गई है, जितनी कि कभी नहीं थी। क्योंकि मनुष्य ने पुरुष-चित्त का प्रयोग करके देख लिया है। हमारा पच्चीस सौ वर्षों का पिछला इतिहास पुरुष-चित्त के प्रयोग का इतिहास है : तर्क का, संघर्ष का, हिंसा का, आकर्षण का, विजय की आकांक्षा का। यह सब पच्चीस सौ वर्ष में हमने प्रयोग करके देखा है। आदमी रोज-रोज ज्यादा से ज्यादा दुखी ही हुआ। हम जो भी पाना चाहते थे, वह मिला नहीं। और जो हमारे पास था वह भी खो गया। यह पुरुष-चित्त के आधार पर हमने प्रयोग करके देख लिया और **हम असफल हो गए।**

लाओत्से जब बोला था, तब पुरुष-चित्त की इतनी बड़ी असफलता नहीं हुई थी, इसलिए लाओत्से को सुना नहीं गया। अच्छा हो कि हम ऐसा कहें कि लाओत्से अपने समय के पच्चीस सौ वर्ष पहले पैदा हो गया। यह उसकी भूल थी। उसे **आज पैदा होना चाहिए था। आज उसकी बात सुनी जा सकती थी।** ऐसा समझें कि जैसे बीमारी पैदा नहीं हुई हो और चिकित्सक पहले पैदा हो गया हो और उसने औषधि की बात की हो, लेकिन किसी ने ध्यान न दिया हो! क्योंकि अभी वह बीमारी ही पैदा नहीं हुई, जिसके लिए वह औषधि बता रहा है। लेकिन पच्चीस सौ साल में हमने वह बीमारी पैदा कर ली है, **जिसकी औषधि लाओत्से है।** पुरुष-चित्त का प्रयोग असफल हो गया। उसने ले-देकर हमें पहुंचा दिया है 'टोटल वार' पर, पूर्ण युद्ध पर। और उसके आगे कोई गति दिखाई नहीं पड़ती है—उसके आगे कोई मार्ग नहीं है। या तो मनुष्य जाति समाप्त हो और या मनुष्य जाति कोई नये मार्ग पर चलना शुरू करे। **इसलिए आज लाओत्से की बात करने की सार्थकता है।** आज लाओत्से चुना जा सकता है, चुनना ही पड़ेगा। अगर आदमी को बचना है, तो स्त्रैण-चित्त की जो खूबियां हैं, उनको स्थापित किये बिना **बचने का कोई उपाय नहीं है।**

पुरुष हार चुका यह कोशिश करके—कि हम सिर्फ पुरुष के आधार पर दुनिया को निर्मित कर लें। लेकिन पुरुष से ज्यादा गहरा तत्व स्त्री है। और उसे हम काटकर जीवन को निर्मित नहीं कर पाये। हां, हमने सारी दुनिया को एक पागलखाना जरूर बना लिया है। हम उसे एक परिवार नहीं बना पाये। स्त्री केन्द्र पर न हो, तो कोई भी घर पागलखाना हो जायगा।

और अगर स्त्री केन्द्र पर हो, तो हमारे हजार तरह के तनाव को विसर्जित करने के काम आ सकती है। अगर संस्कृति के केन्द्र पर भी स्त्री हो, तो हमारे हजार तरह के तनाव विसर्जित हो सकते हैं। स्त्रैण चित्त को हमें संस्कृति के निर्माण में बुनियादी आधार देना पड़ेगा। और वक्त आ गया है कि हमें आने-वाले तीस-चालीस वर्षों में निर्णय करना है। **इसलिए मैंने लाओत्से पर बात शुरू करनी उचित समझी।**

निश्चित ही आज लाओत्से बिल्कुल उल्टा दिखाई पड़ता है। **आदमी बहुत जटिल है और लाओत्से सरलता की बात करता है।** आदमी बहुत अहंकारी है और लाओत्से विनम्रता की बात करता है। और आदमी शिखर चढ़ना चाहता है, चांद-तारों की ओर भाग रहा है और लाओत्से खाइयों और गड्ढों में उतरने के नियम की बात करता है। आदमी प्रथम होना चाहता है और लाओत्से कहता है कि अंतिम हुए बिना जीवन के आनन्द को पाने का कोई और उपाय नहीं है। तो लग सकता है कि ऐसे उल्टे युग में लाओत्से की बात कौन सुनेगा। लेकिन मैं आपसे कहूं कि जब हम एक अति पर पहुंच जाते हैं, तभी दूसरी अति पर बदलने की हमारी तैयारी शुरू होती है। **जटिलता की हम अति पर पहुंच गए हैं।** अब इसके आगे कोई उपाय नहीं है। और अब विपरीत बात हमारी समझ में आ सकती है। जैसे कोई आदमी बहुत श्रम करके थक गया हो, तभी उसको नींद की बात समझ में आ सकती है। निद्रा श्रम के बिल्कुल विपरीत है। लेकिन कोई थका ही न हो, तो क्या होगा ? ऐसा अक्सर होता है। जिनके पास सुविधा है, वे दिन में श्रम करने से बच जाते हैं और फिर शिकायत करते हैं कि रात में उन्हें नींद नहीं आती। सुविधा है, वे श्रम करने से बच जाते हैं; तो सोचते हैं कि उन्हें और भी गहरा विश्राम उपलब्ध होना चाहिए। लेकिन वे गलती में हैं, **क्योंकि विश्राम उसी को उपलब्ध होता है, जो गहरे श्रम में गया हो।** गहरे श्रम में जाने के बाद ही विश्राम में जाने की सुविधा बनती है और गहरे विश्राम में जाने के बाद ही पुनः श्रम में उतरने की शक्ति अर्जित होती है।

जीवन सदा ही विपरीत तटों के बीच से बहती हुई नदी की धार जैसा है।

हमने पुरुष के किनारे पर काफी जी लिया है। और अब वक्त आ गया है कि हम स्त्री के किनारों पर सरक जाएं। और उस सरकने से एक संतुलन और एक बैलेन्स और एक सम्यक् स्थिति निर्मित हो सकती है। यह **बदलाहट का वक्त है।** इसलिए मैं ऐसा नहीं देखता कि हम जटिल आदमी हैं इसलिए कैसे हम लाओत्से की बात समझेंगे ? मैं ऐसा देखता हूं कि चूंकि

आदमी इतना जटिल हो गया है कि अब और जटिलता की बात उसकी समझ में नहीं आ सकेगी, अब विश्राम की बात ही समझ में आ सकती है। असल में आदमी वहां पहुंच गया है, जहां पुरुष-चित्त अपनी पूरी अभिव्यक्ति में है। अब और आगे उपाय नहीं है। तनाव पूरा हो जाए, तो विश्राम उपलब्ध हो जाता है। और आदमी दौड़ता रहे, दौड़ता रहे, तो पूरी तरह दौड़ने से वह गिर जाता है और रुक जाता है। कभी आपने सोचा कि दौड़ने की अंतिम मंजिल क्या होती है ? **दौड़ने की अंतिम मंजिल गिरने के सिवाय और कुछ नहीं होती।** विपरीत आ जाता है अन्त में हाथ।

लाओत्से अभी हाथ में लाया जा सकता है। अपने समय में लाओत्से की बात दुनिया की समझ में नहीं आई, क्योंकि वे लोग इतने जटिल नहीं थे कि लाओत्से उनके लिए चिकित्सक बन सकता। लोग इतने परेशान नहीं थे कि लाओत्से की बात उनके खयाल में आती। लोग अभी प्रथम खड़े ही नहीं हुए थे कि अंतिम खड़े होने का सूत्र समझ पाते। **लेकिन हम प्रथम खड़े हो गए हैं।** लोगों के पास इतना धन भी नहीं था कि निर्धनता की मौज, निर्धनता का आनन्द भी उनके खयाल में आ सकता था। लेकिन अब इतना धन जमीन पर इकट्ठा हुआ जा रहा है कि निर्धनता किसी भी दिन स्वतन्त्रता मालूम पड़ सकती है।

एक घटना मुझे याद आती है। कन्फ्यूसियस एक गांव से गुजरता है और देखता है, एक बूढ़ा आदमी अपने बगीचे में अपने बेटे को अपने साथ जोते हुए कुंए से पानी खींच रहा है। कन्फ्यूसियस चकित हुआ। और कन्फ्यूसियस ने बूढ़े आदमी के पास जाकर कहा कि क्या तुम्हें पता नहीं है कि अब लोग घोड़ों और बैलों से पानी खींचने लगे हैं। और राजधानी में तो कुछ मशीनें भी बना ली गई हैं, जिनके द्वारा पानी खिच जाता है। उस बूढ़े आदमी ने कन्फ्यूसियस से कहा कि जरा धीरे बोलो, कहीं मेरा बेटा न सुन ले। तुम थोड़ी देर से आना। कन्फ्यूसियस बहुत हैरान हुआ। जब वह कुछ देर बाद पहुंचा, तो उस बूढ़े ने, जो वृक्ष के नीचे लेटा था, कन्फ्यूसियस से कहा कि ये बातें यहां मत लाओ। यह तो मुझे पता है कि अब घोड़े जोते जाने लगे हैं। घोड़ा जोतकर मैं बेटे का समय तो बचा दूंगा, लेकिन फिर बेटे के बचे हुए समय का क्या करूंगा ? और घोड़े जोतकर मैं बेटे की शक्ति भी बचा दूंगा, लेकिन उस शक्ति का मेरे पास कोई उपयोग नहीं है। तुम अपनी मशीन और अपने घोड़े को शहर में रखो, यहां उनकी खबर मत लाओ।

लेकिन यह खबर रुक नहीं सकती थी। यह पहुंच गई। एक बाप के पास से दूसरे बाप के पास पहुंच गई। और धीरे-धीरे सब जगह आदमी को

हटाकर मशीन आ गई। वह जो बूढ़ा था, वह लाओत्से का अनुयायी था। लेकिन कन्फ्यूसियस जीत गया। लेकिन, आज फिर लाओत्से वापस जीत सकता है। क्योंकि जहां-जहां मशीन पूरी तरह आ गई, वहीं-वहीं सवाल उठ रहा है कि **आदमी समय का अब क्या करे ? शक्ति का क्या करे ?** और जिस शक्ति और समय का हम उपयोग नहीं कर पाते, उसका हमें दुरुपयोग करना पड़ता है। क्योंकि बिना किए हम रह नहीं सकते। करना तो कुछ पड़ेगा ही। जां पॉल सार्त्र ने कहा है कि चुनाव तो तुम कर सकते हो, लेकिन न चुनाव करने के चुनाव की कोई स्वतन्त्रता नहीं है। यू कैन चूज़, बट यू कैन नॉट चूज़ नॉट चूज़िंग। चुनना तो पड़ेगा ही। करना तो कुछ पड़ेगा ही। अगर ठीक नहीं करोगे, तो गलत करना पड़ेगा। शक्ति का तो उपयोग करना ही पड़ेगा। अगर सृजनात्मक न हुआ, तो विध्वंसात्मक हो जाएगा।

पच्चीस सौ साल तक लाओत्से की बात बीज की तरह पड़ी रही कि ठीक वक्त आये, तो उसमें अंकुर आ जाएं। अब वह वक्त आ गया है। अब हम लाओत्से की बात समझ सकते हैं कि इसके पहले कि तुम आदमी को मशीन दो, आदमी की शक्ति का सृजनात्मक उपयोग पहले बता दो। और इससे पहले कि तुम आदमी के हाथ में एटम बम रखो, आदमी की आत्मा इतनी बड़ी बना दो कि एटम बम उसके हाथ में रखा जा सके। अन्यथा एटम बम उसके हाथ में मत रखो। छोटे आदमी के हाथ में एटम बम खतरनाक होगा। **अज्ञानी के हाथ में शक्ति खतरनाक हो जाती है।** अच्छा हो कि ज्ञानी सशक्त हो। तो कम से कम कोई दुरुपयोग नहीं होता है। लाओत्से अब समझा जा सकता है, क्योंकि हमने वह सारा रास्ता चलकर देख लिया, जिसके लिए लाओत्से कहता है कि अंत में सिर्फ बीमारियां पैदा होती हैं। इसलिए मैंने लाओत्से को चुना, ताकि हम पच्चीस सौ साल पुरानी उसकी बात की (लेकिन बिल्कुल कुंवारी, क्योंकि उस पर कभी नहीं चला गया) फिर चर्चा चलायें तो शायद आदमी अब राजी हो जाए। मैं कहता हूं **'शायद'**, क्योंकि कई बार ऐसा होता है कि **हम मरने को राजी हो जाते हैं, लेकिन बदलने को नहीं।** क्योंकि मरना ज्यादा आसान मालूम पड़ता है बजाए बदलने के। इसलिए कहता हूं, **शायद आदमी राजी हो जाए।** जरूरी नहीं है कि आदमी राजी हो ही। आदमी मरने को भी राजी हो सकता है। बदलाहट में बड़ा कष्ट होता है। और मरने को हम शहादत भी समझ सकते हैं कि हम शहीद हुए जा रहे हैं। और बदलाहट में अहंकार को चोट लगती है कि हमें बदलना पड़ रहा है। आदमी एक कदम रखने के साथ पीछे लौटने में संकोच करता है कि लोग क्या कहेंगे।

सुना है मैंने एक रात मुल्ला नसरुद्दीन घर से बाहर निकला—पिया हुआ, डूबा हुआ। सुनसान निर्जन रास्ता है। अंधेरी रात में सिर्फ बिजली का खम्भा ही एकमात्र रास्ते पर उसका गवाह है। चला रास्ते पर सोचकर कि कहीं बिजली के खम्भों से न टकरा जाऊं। और बिजली के खम्भे से टकरा गया। क्योंकि जो आदमी किसी चीज से टकराने से बचेगा, वह उससे जरूर टकरा जाएगा। क्योंकि बचने के लिए उसे उसी का ध्यान रखना पड़ता है। देखता रहा बिजली के खम्भे को कि कहीं टकरा न जाऊं, देखता रहा कि कहीं भूल-चूक न हो जाए। जिसको देखता था, उसकी तरफ ही चलता चला गया और खम्भे से टकरा गया, टकरा गया, तो फिर उठा, पांच कदम फिर पीछे गया और फिर उसने वही किया कि अब दुबारा न टकरा जाए, इसलिए उसने बिजली के खम्भे पर ही ध्यान रखा, क्योंकि तर्क सीधा यही कहता है कि अगर बचना हो, तो पूरा ध्यान रखो। मालूम होता है कि पिछली बार थोड़ा हमने कम ध्यान रखा था। और अब वह पूरे रास्ते को भूल गया। और अब वह एक बिजली का खम्भा ही उसकी दृष्टि में रह गया, एकदम एकाग्र कि कहीं टकरा न जाये। और उसके कदम डिग चले और वह फिर टकरा गया। सिर टूट गया, लहू-लुहान हो गया।

वह उठा और बोला कि बड़ी मुश्किल में हूं। आंख में आंसू आ गये। फिर तीसरी बार कोशिश की। लेकिन रास्ता नहीं बदला। इतना बड़ा रास्ता था। उस पर कहीं और भी जा सकता था। वह नहीं किया। किया उसने वही, जो दो-दो बार किया था, तीसरी बार फिर किया, आखिरी बार और ताकत लगाकर किया। अब जाकर वह सिर के बल गिरा, तो सिर उसका घूम गया और एक बिजली का खम्भा कई बिजली के खम्भे मालूम होने लगे। अब वह और भी घबड़ाया। आखिरी समय उसने ताकत लगाकर अपने को इकट्ठा किया और भगवान के भरोसे उसने कहा, एक और कोशिश करके देखूं। फिर उसने वही किया पूरी ताकत लगाकर।

और जब वह चौथी बार जाकर गिरा, तो उसने कहा कि हे भगवान! निकलने का और कोई रास्ता नहीं मालूम होता है। ऐसा मालूम होता है कि चारों तरफ बिजली के खम्भों से घेर दिया गया हूं। जहां जाता हूं, वहां बिजली का खम्भा मिल जाता है। लेकिन, सच में वह कहीं नहीं जा रहा है, वह एक ही जगह जा रहा है। और बिजली का खम्भा एक ही है। और अंधा आदमी भी बिना टकराये निकल सकता है। लेकिन, वह आंख वाला आदमी, लेकिन बेहोश, नहीं निकल पाता है।

हम सब आंख वाले आदमी हैं, लेकिन बेहोश। और हमारी बड़ी से बड़ी बेहोशी को, लाओत्से जो नाम देता है, **वह अहंकार है**। तो लाओत्से कहता है, अहंकार हमारी बेहोशी है, क्योंकि वह हमें इस जगत के प्रति तथ्यात्मक नहीं होने देती। हमारे प्रोजेक्शन्स को ही, प्रक्षेपणों को ही वह जगत पर थोप देती है। हमको नहीं देखने देती कि जगत कैसा है। हम अपने को ही जगत पर थोप लेते हैं। हम सब वही देखते रहते हैं, जो हमारा अहंकार हमें दिखलाता है; वही सोचते रहते हैं, जो सोचने के लिए अहंकार हमें मजबूर करता है। हम वही मान लेते हैं, जो अहंकार हमसे कहता है कि मान लो। तथ्य को हम नहीं देखने जाते। **और तथ्य को केवल वही देख सकता है, जिसके भीतर अहंकार का प्रोजेक्टर विदा हो गया हो।**

● एक मित्र ने पूछा है कि अहंकार भी तो प्रकृति से ही पैदा होता है, तो इसको हटाने की क्या जरूरत है? लाओत्से नहीं कहता कि हटाओ। और लाओत्से यह भी नहीं कहता है—कि अहंकार प्रकृति से पैदा नहीं होता है। सब बीमारियां भी प्रकृति से ही पैदा होती हैं। **जो कुछ भी पैदा होता है,** प्रकृति से पैदा होता है। लाओत्से इतना ही कहता है कि अगर अहंकार की बीमारी को पकड़ोगे, **तो दुख पाओगे**। और अगर दुख पाना हो, तो मजे से पकड़ो। लेकिन आदमी अद्भुत है। वह पकड़ता अहंकार को है और पाना चाहता है आनन्द। तब लाओत्से कहता है कि तुम गलत बात कर रहे हो। और एक आदमी को मरना है, तो जहर पी ले। जहर भी प्रकृति से ही पैदा होता है। लेकिन वह आदमी कहे कि जहर तो प्रकृति से पैदा होता है, जहर तो मैं पिऊंगा, क्योंकि प्रकृति से पैदा होता है, लेकिन मरना मैं नहीं चाहता। तब फिर वह कठिनाई में पड़ेगा। लाओत्से कहता है कि मरना हो, तो मजे से जहर पी लो और मर जाओ। नहीं मरना हो, तो फिर जहर मत पियो। मरने की घटना भी प्राकृतिक है, जहर का पीना भी प्राकृतिक है, और निर्णय तुम्हारे हाथ में है कि—मरना चाहते हो कि नहीं मरना चाहते हो।

अहंकार प्राकृतिक है। लेकिन उसकी पीड़ा, उसके नर्क को भोगना हो, तो आदमी भोग सकता है। न भोगना हो, न भोगे। आदमी के हाथ में है कि वह अहंकार के प्राकृतिक बीज को वृक्ष बनाए या न बनाए। लाओत्से नहीं कहता कि अहंकार को हटा दो। वह आप से कहता है कि अगर दुख न चाहते हो, **तो अहंकार से हटना होगा**। अगर दुख चाहते, तो अहंकार को और बढ़ाओ। हम उल्टे हैं। हम चाहते वह हैं, जो कि अहंकार से नहीं मिलेगा। और अहंकार को भी नहीं हटाना चाहते हैं। इस दुविधा में हमारे प्राण संतापग्रस्त हो जाते हैं।

● एक दूसरे मित्र ने पूछा है कि सदा ही साधुजनों ने ऊर्ध्वगमन की बात कही है, ऊंचे जाने की और लाओत्से नीचे जाने की बात करता है। लाओत्से नीचे जाने की बात इसीलिए करता है कि नीचे जाये बिना कोई ऊपर नहीं जाता है। जिन्होंने ऊपर जाने की बात कही है, उन्होंने लक्ष्य की बात कही है, साध्य की। और लाओत्से नीचे जाने की बात करके **साधन की बात कर रहा है। ऊपर जाना हो, तो नीचे जाना पड़ेगा।** यह उल्टा दिखता है। नीत्से ने कहीं लिखा है कि जिस वृक्ष को बहुत ऊपर जाना हो, उसको अपनी जड़ें नीचे, बहुत गहरे में पहुंचानी पड़ती हैं। जिस वृक्ष को आकाश में जितना ऊंचा उठना हो, उसे पाताल की तरफ अपनी जड़ों को उतना ही गहरा पहुंचाना पड़ता है। अब वृक्ष से हम दो बातें कह सकते हैं। हम कह सकते हैं, तुझे ऊपर जाना है, तो जड़ों को नीचे फैला। हम उसे यह भी कह सकते हैं कि तू जड़ों को नीचे फैला, **ऊपर जाने की घटना घट जाएगी।** लेकिन अगर कोई वृक्ष ऊपर ही जाने की कोशिश में लग जाए और नीचे जाने की कोशिश बन्द कर दे, तो ऊपर वह जा ही नहीं पाएगा। कोई उपाय नहीं है ऊपर जाने का। लाओत्से कहता है, ऊपर जाना हो, तो नीचे जाने की व्यवस्था तुम्हें करनी पड़ेगी। ऊपर को तो तुम भूल ही जाओ। उसे प्रकृति के ऊपर छोड़ दो। तुम अपनी जड़ों को नीचे पहुंचा दो। **प्रकृति तुम्हारे फूलों को आकाश में खिला देगी।** उसकी तुम्हें चिन्ता भी करने की जरूरत नहीं है। क्योंकि उतनी चिन्ता करने से भी तुम्हारी जड़ें कमजोर रह जाएंगी। तुम अपनी सारी चिन्ता ही जड़ों पर लगा दो, फूल अपने आप खिल जाएंगे। जहां जड़ें होती हैं, वहां फूल खिल ही जाते हैं। जड़ें जितनी मजबूत हों, उतने ही बड़े फूल खिल जाते हैं।

लाओत्से कहता है, अंतिम जगह खोज लो, जैसे पानी अंतिम जगह खोज लेता है। और तुम्हारे शिखर तुम्हारे पास चले आयेंगे। **झील बन जाओ और तुम गौरीशंकर बने हुए पाओगे अपने को।** तुम गौरीशंकर होने की फिकर ही छोड़ दो; क्योंकि लाओत्से कहता है कि नियम ही ऐसा है कि जो ऊपर पहुंचना चाहता है, वह नीचे पहुंचा दिया जाता है। और जो नीचे पहुंचने को राजी हो जाता है, उसकी ऊंचाई के लिए कोई प्रतिस्पर्धा नहीं होती। नियम उसका समझ लें। कठिनाई क्या है कि कुछ नियम जो विपरीत होते हैं, हमारी समझ में नहीं आते हैं। क्योंकि हम स्ट्रेट लॉजिक (सीधे-तर्क) में भरोसा करते रहे हैं। वही पुरुष का चित्त है। सीधे तर्क पर हमारा भरोसा है। हमें पता नहीं है कि जिन्दगी सीधा तर्क नहीं मानती है। जिन्दगी उल्टे तर्क को मानती है। हमारा भरोसा सीधे तर्क में है। हम ऐसा चलते हैं, जैसे कोई आदमी एक हाई-वे पर चलता है। सीधा रास्ता है।

लेकिन जिन्दगी के कोई हाइ-वे नहीं होते हैं, राजपथ नहीं होते हैं। जिन्दगी तो पहाड़ पर चढ़ने वाले रास्तों जैसी है। **वहां सब घूम-घुमावदार रास्ते होते हैं।** अभी मैं जिस रास्ते पर खड़ा हूं पहाड़ के, ऐसा लगता है कि अगर इस पर सीधा चला जाऊं, तो चांद पर पहुंच जाऊंगा। चांद सामने दिखाई पड़ रहा है। लेकिन दो घड़ी बाद पता चलता है कि रास्ता भूल गया और चांद की तरफ पीठ हो गई। जिन्दगी के रास्ते गोल हैं, घुमावदार हैं। उसमें कोई चीज सीधी नहीं होती। और हम सब सीधे होते हैं। जैसे उदाहरण के लिए, अगर कोई आपसे कहे कि मैं सुबह घूमने जाता हूं और मुझे बहुत आनन्द मिलता है, तो आप कहेंगे कि आनन्द तो मैं भी चाहता हूं, तो मैं भी कल सुबह से घूमने जाऊंगा। और अगर आप आनन्द पाने ही घूमने गये, तो आप सिर्फ थक कर ही वापस लौटेंगे, आनन्द आपको मिलेगा ही नहीं। क्योंकि पूरे वक्त, एक-एक कदम चल कर आप नजर रखेंगे कि अभी तक आनन्द मिला नहीं, अभी तक मिला नहीं। पता नहीं, कब मिलेगा। दो मील हो गये चलते, अभी तक आनन्द मिला नहीं। आपका ध्यान आनन्द मिलने पर रहेगा, चलने पर नहीं। चलना तो जबरदस्ती होता रहेगा; जल्दी आनन्द मिल जाए तो घर वापस लौटें। चलना तो एक मजबूरी रहेगी। अगर आनंद घर ही बैठे मिलता, तो आप न चले होते। चले हैं आप इसलिए कि किसी ने कहा कि आनंद चलने से मिलेगा। आप लौटकर कहेंगे कि गलत बात कही है। आनंद चलने से मुझे जरा भी नहीं मिला। चार मील भटक कर आ गया हूं। आनंद की कोई खबर नहीं है। लेकिन जिसने दी, गलत खबर नहीं दी।

चलने से आनन्द मिल सकता है, लेकिन उसको ही, जिसको आनन्द की फिक्र ही न हो, चलने की ही फिक्र हो, चलने का ही जिसे ध्यान हो, आनन्द की फिक्र ही न हो। आनन्द बाई-प्रोडक्ट है, उप-उत्पत्ति है। जब कोई चलने में इतना तल्लीन हो जाता है कि चलने वाला मिट जाता है और चलने की क्रिया ही रह जाती है, **तब आनन्द का फूल खिलता है।**

जीवन घुमावदार है। अगर आप सोचते हैं कि किसी को प्रेम करने से आनन्द मिलेगा, तो आपको वह कभी नहीं मिल सकेगा। **यद्यपि प्रेम करने से आनन्द मिलता है।** लेकिन वह उसे ही मिलता है, जो प्रेम में डूब जाता है और आनन्द की जिसे चिन्ता ही नहीं रहती। जिसे आनन्द की चिन्ता है, वह प्रेम तो करता है, लेकिन ध्यान आनंद पर रखता है। और तब पाता है कि प्रेयसी का हाथ, हाथ में ले लिया, अब तक आनन्द मिला नहीं। कभी नहीं मिलने वाला है। फिर भी जो कहते हैं कि प्रेम से आनन्द मिलता है, वे ठीक ही कहते हैं। असल में प्रेम और आनन्द में सम्बन्ध ऐसा नहीं है, जैसे हम

पानी को गर्म करते हैं और वह भाप हो जाता है। कॉजल लिंक नहीं है। पानी को गर्म करियेगा, तो पानी भाप बनेगा ही। **जीवन में जितने गहरे उतरियेगा, उतने ही कॉजलिटी, कार्य-कारण कम हो जाते हैं और उतने ही ज्याद। सहज परिणाम सघन हो जाते हैं।** जीवन की जितनी गहरी बातें हैं, वे सहज परिणाम हैं। आप कहीं संगीत सुनने गये हैं और आप बैठे हैं बिल्कुल रीढ़ को सीधा कर, आसन साधे हुए कि आनन्द मिलना चाहिए। आप सिर्फ थक जाएंगे, कोई आनन्द नहीं मिलेगा। विश्राम को उपलब्ध हो जाइए, आंख बन्द कर लीजिये, आनन्द की बात ही छोड़ दीजिए, संगीत में डूबिए। अगर आप संगीत में इतना डूब गए कि आपको आनन्द का भी खयाल न रहा, तो आप आनन्द से भरे हुए घर लौटेंगे! यह आनन्द का जो फूल है वह आपके तनाव में नहीं खिलता है। वह आपके विश्राम में खिलता है। और जो लोग भी साध्य के प्रति बहुत उत्सुक होते हैं, वे कभी भी विश्राम को उपलब्ध नहीं होते।

इसलिए लाओत्से कहता है कि ऊपर की तुम फिक्र छोड़ो, तुम पानी की तरह हो जाओ। नीचे उतर जाओ, तुम गड्ढे में भर जाओ। शिखर तो उपलब्ध हो ही जाते हैं। वह उनकी बात नहीं करता है। वे हो ही जाते हैं, उनकी चर्चा करने की भी जरूरत नहीं है। लेकिन हम उल्टे लोग हैं। अगर लाओत्से की बात भी सुनेंगे, तो भी हम इसीलिए सुनेंगे कि लाओत्से कहता है कि पहुंच जाओगे ऊपर, अगर नीचे गए। तो हम भरोसा कर लेना चाहते हैं कि पक्का है यह गणित। ऐसा न हो कि हम नीचे चले जाएं और ऊपर न पहुंचें; तो उल्टे और नीचे चले गए और ऊपर पहुंचने से वंचित रह गए। पक्का है कि नीचे जाएंगे, तो ऊपर पहुंचेंगे। हम बिल्कुल पक्का करके जाते हैं। लेकिन तब हम नीचे तो पहुंच जाएंगे, लेकिन ऊपर नहीं पहुंचेंगे। क्योंकि वह ऊपर पहुंचना जो है, वह पक्का करके जाने वालों के हाथ की बात नहीं है। उसके लिए कोई गारन्टी नहीं है। जहां गारन्टी होगी, वहां वह नहीं होगा—वह घटना ही नहीं घटेगी। इस जीवन के विपरीत तर्क को समझ लेने की जरूरत है।

मेरे पास लोग आते हैं और कहते हैं कि शांति चाहिए। मैं उनसे कहता हूं कि शांति को भूल जाओ, तुम सिर्फ ध्यान करो। वे पूछते हैं कि यदि ध्यान करूंगा, तो शांति मिल जायगी? मैं उनसे कहता हूं कि शांति को भूल जाओ, तुम सिर्फ ध्यान करो। वे फिर पूछते हैं कि ध्यान करूंगा, तो शांति मिल जायगी? मैं उनसे कहता हूं कि तुम शांति को छोड़ो, क्योंकि तुम इतने दिनों से शांति पाने की कोशिश कर रहे हो, वह नहीं मिली। अब तुम इसको छोड़

दो, अब तुम सिर्फ ध्यान करो। तब वे पूछते हैं कि क्या शांति का खयाल छोड़ देने से शांति मिल जायगी ? तो बात वहीं अटकी रहती है।

सुना है मैंने कि मुल्ला नसरुद्दीन जब सौ वर्ष का हुआ, तब अचानक गांव के लोगों ने देखा कि वह इतना संतुष्ट, इतना आनन्दित और इतना कन्टेन्टेड हो गया है कि वे चकित हुए। क्योंकि उससे ज्यादा डिसकन्टेंटेड आदमी खोजना मुश्किल था। बहुत असन्तुष्ट आदमी था वह। हर चीज से परेशान आदमी था। हर चीज से शिकायत थी उसे। और वह एकदम आनंदित हो गया है। गांव के लोग इकट्ठे हो गए। और सारे गांव के लोगों ने कहा कि नसरुद्दीन, चमत्कार, तुम और शांत हो गए ! हम कभी सोच भी नहीं सकते थे। यह चमत्कार हो गया ! इसका राज क्या है ? नसरुद्दीन ने कहा कि हमने निन्यानवे साल गँवाए शांत होने की कोशिश में। आज मैंने तय किया कि अशांति के साथ ही जी लूं। इतनी बात है। आज मैंने तै कर लिया कि शांति नहीं चाहिए, अब अशांति के साथ ही जी लूं। हो गया बहुत। निन्यानवे साल कोशिश कर ली। शांति नहीं मिली। अब छोड़ दें। और सच में मैं एकदम शांत हो गया हूं।

जो अशांति के साथ जीने को राजी हो जाए, उसकी शांति में क्या कमी रह जायगी ? **जो दुख के साथ जीने में राजी है, उसके सुख को कौन छीन सकता है** ? और जो नीचे उतर कर आखिरी गड्ढे में पड़े रहने को तैयार है, उसके शिखर को छीनने की किसी के हाथ में शक्ति नहीं है। जो 'न-कुछ' होने को तैयार है, वह 'सब-कुछ' हो जाएगा। और जो मिटने को राजी है, परमात्मा की सम्पदा, **सारी संपदा उसकी है**। लाओत्से इस सूत्र की बात कर रहा है। इसका मतलब यह नहीं है कि लाओत्से कहता है कि अधोगामी हो जाओ। लाओत्से यह कहता है कि ऊर्ध्वगामी होने का एक ही उपाय है कि तुम अन्तिम खड़े होने को तैयार हो जाओ।

● एक मित्र ने पूछा है कि लाओत्से स्त्रैण चित्त की इतनी गहराई की बात करता है, लेकिन स्त्रैण चित्त से अभी तक एक तीर्थंकर, एक अवतार, एक पैगम्बर, कोई जीसस, कोई बुद्ध, कोई महावीर, कोई कृष्ण पैदा नहीं हुए। होना तो उल्टा ही चाहिए था। अगर स्त्रैण चित्त की ऐसी गरिमा है, तो इस जगत के सारे धर्मों को स्त्रैण चित्त से निकलना चाहिए था। लेकिन सभी धर्म पुरुषों से निकले हैं। यह जरूर समझ लेने जैसी बात है। ऐसा क्यों है ? उन्होंने पूछा है। ऐसा होने का कारण है। जैसा मैंने आपसे कहा कि बायलॉजिकली जैविक शास्त्र की दृष्टि से स्त्री और पुरुष का जो सम्बन्ध है, जगत में जो चीज भी पैदा होती है, उसमें भी स्त्री पुरुष का वैसा ही सम्बन्ध होता है।

जब बच्चा पैदा होता है, तब पुरुष एक्सीडेन्टल, सांयोगिक काम करता है। क्षण भर का उसका सहयोग है बच्चे को पैदा करने में। लेकिन शुरुआत वही करता है, इनीशियेट वही करता है, पहल वही करता है। क्षण भर का उसका काम है, लेकिन बच्चे के जन्म की यात्रा उसी से शुरू होती है। शेष सारे काम मां करती है। उस बच्चे को वह नौ महीने पेट में रखेगी, उसे खून देगी, उसे जीवन देगी, उसे सांस देगी। फिर नौ महीनों पर ही समाप्त नहीं हो जाता सब कुछ। फिर उसे बड़ा करेगी, पालेगी, पोसेगी, और सब करेगी।

इस जगत में और चीजें भी जो पैदा होती हैं, वे भी ऐसे ही पैदा होती हैं। आप चकित होंगे जानकर कि महावीर जरूर धर्म को जन्म देते हैं, जीसस धर्म को जन्म देते हैं, बुद्ध धर्म को जन्म देते हैं, लेकिन इस जगत में कोई भी धर्म बिना स्त्रियों के पचता नहीं। स्त्रियां ही उसे पचाती हैं, बड़ा करती हैं और फैलाती हैं। यह आपके खयाल में नहीं होगा; जाकर मंदिर में, मस्जिद में, चर्च में झांककर देखें। वहां कौन है ? वहां पुरुष नदारत है और अगर पुरुष पहुंच भी गया है, तो अपनी पत्नी के भय की वजह से वह वहां हाजिर है। ये सारे मंदिर, सारे चर्च, सारे गिरजे स्त्रियां चला रही हैं। धर्म को जन्म तो पुरुष दे जाता है, लेकिन उसकी देखभाल, उसकी सम्हाल, उसको गर्भ में रखना और सम्हालना, उसको बड़ा करना, सब स्त्रियां करती हैं। मनस्-विद् कहते हैं कि दुनिया में कोई भी धर्म बच नहीं सकता है, यदि धर्म में स्त्रियां दीक्षित न हों। कोई धर्म बच नहीं सकता, **क्योंकि उस धर्म को गर्भ नहीं मिलेगा।**

क्या आपको पता है कि महावीर ने जब लोगों को दीक्षा दी, तब हरेक पुरुष के मुकाबले चार स्त्रियों ने दीक्षा ली। महावीर के भिक्षुओं में, संन्यासियों में, साधुओं में तेरह हजार पुरुष थे, तो **चालीस हजार स्त्रियां थीं।** जीसस को पुरुषों ने सूली लगाई, लेकिन जिसने सूली से नीचे उतारा था, वह एक वेश्या थी। जब जीसस के सारे शिष्य, पुरुष शिष्य भाग गये थे, तब भी तीन स्त्रियां उनकी लाश के पास खड़ी थीं। अंतिम सांस जीसस ने स्त्रियों के बीच छोड़ी। और जिन्होंने उन्हें सूली से उतारा, वे भी स्त्रियां थीं। और जब पुरुष भाग गए थे, तब भी स्त्रियां वहां तैयार थीं। खतरा था उनकी भी मौत का। जन्म तो सब पुरुषों ने दिया, क्योंकि जो बायलॉजिकल जो है, वही साइकोलॉजिकल भी है। सब धर्मों को जन्म पुरुषों ने दिया है। **लेकिन सब धर्मों को गर्भ स्त्रियों से मिला है।** यह अगर खयाल में आ जाएगा, तो यह शिकायत आपके मन में नहीं उठेगी। और आज भी अगर पृथ्वी पर धर्म

जिन्दा है तो वह पुरुषों की वजह से नहीं। जन्म भले ही वे देते हैं, लेकिन उनको जिन्दा रखने के लिए स्त्रियों के सिवाय कोई उपाय नहीं है।

किसी भी चीज को जन्म देने की पहल पुरुष करता है, लेकिन वह उसको गर्भ नहीं दे सकता। और जन्म देने से ही किसी को जन्म नहीं मिलता, गर्भ देने से ही वस्तुतः जन्म मिलता है। क्योंकि हारमोन्स, खून, मांस, मज्जा, सब स्त्रियां देती हैं। इसलिए खयाल में नहीं आता। सुरक्षा, विस्तार, संरक्षण, स्त्रैण-चित्त का हिस्सा है। पहल, प्रारम्भ पुरुष-चित्त का हिस्सा है। लेकिन पुरुष पहल करने के बाद ऊब जाता है, दूसरे काम में लग जाता है। अगर महावीर को फिर से जन्म मिले, तो एक बात पक्की है कि वे जैन धर्म की बात अब नहीं करेंगे। वह किसी दूसरे धर्म को जन्म दे देंगे। पुरुष रोज नये को जन्म देने को उत्सुक होता है। स्त्री पुराने को सम्हालने के लिए आतुर होती है। **एक अर्थ में प्रकृति इन दोनों के जरिए जीवन को स्थिर करती है।** क्योंकि सिर्फ नये को जन्म देना काफी नहीं है। पुराने को सम्हालना भी उतना ही जरूरी है, अन्यथा जन्म देने का कोई अर्थ ही न रह जायगा। इसलिए पुरुष अगर ठीक पुरुष-चित्त का हो, **तो सदा ही प्रगतिशील होता है।** स्त्री अगर ठीक स्त्री-चित्त की हो, **तो सदा ही परम्परावादी होती है।**

परम्परा का इतना ही अर्थ होता है : जिसको जन्म दिया जा चुका हो, उसको सम्हालना है। और प्रगतिशीलता का इतना ही अर्थ होता है कि जिसका जन्म नहीं दिया गया है, उसे जन्म देना है। लेकिन जन्म देकर क्या करोगे, अगर कोई सम्हालने वाला उपलब्ध न हो। तो गर्भपात ही होगा और कुछ न होगा, एबॉर्शन होगा। अगर पुरुष के ही हाथ में कोई चीज है, तो एबॉर्शन ही होगा और कुछ न होगा। उसकी उत्सुकता उतनी ही देर तक है, जितनी देर तक उसने जन्म की प्रक्रिया को जारी न कर दिया हो। प्रक्रिया जारी हो गई कि वह दूसरे जन्म की प्रक्रिया पर हट जाता है। लेकिन वहीं से जीवन की असली बात शुरू होती है, वहीं स्त्री उसको सम्हाल लेती है। पुरुष-चित्त और स्त्री-चित्त दोनों एक गाड़ी के दो पहिये हैं। इसलिए स्त्रियों ने किसी धर्म को जन्म नहीं दिया, लेकिन स्त्रियों ने ही सारे धर्मों को पचाकर रखा।

● एक मित्र ने पूछा है कि क्या जितने भी ज्ञानी है, उनका चित्त स्त्रैण हो जायगा ? **हो ही जाएगा।** लेकिन स्त्रैण से मतलब नहीं है यह कि वे स्त्रियां हो जाएंगे। स्त्रैण से मतलब यह है कि उनका चित्त एग्रेसिव की जगह रिसेप्टिव हो जाएगा, आक्रामक की जगह ग्राहक हो जायगा। यह ग्राहकता जब होती है पैदा, **तभी कोई व्यक्ति परमात्मा के लिए अपने भीतर द्वार**

खोल पाता है। उन्होंने पूछा है कि तब कैसे हुआ कि मोहम्मद ज्ञान के बाद भी तलवार लेकर लड़ने जाते थे ? निश्चित ही जाते थे। लेकिन मोहम्मद की तलवार पर, पता है आपको कि क्या लिखा है ? मोहम्मद की तलवार लिखा है : **शांति के अतिरिक्त यह तलवार और कहीं नहीं उठेगी**। तलवार पर यह खुदा हुआ है। आपको पता है कि इस्लाम शब्द का अर्थ ही होता है शान्ति। अगर मोहम्मद को तलवार भी उठानी पड़ती है, तो मोहम्मद के कारण नहीं, आसपास की परिस्थितियों के कारण। लेकिन मोहम्मद जिन पर तलवार उठाते हैं, उन पर भी क्रोध और आक्रमण और हिंसा नहीं है। **उन पर भी उनकी दया है**। मोहम्मद को बहुत कम समझा जा सका है। इस जगत में जिन लोगों के साथ बहुत अनाचार हुआ है, उनमें से एक मोहम्मद हैं। और उनकी तलवार की वजह से बहुत अनाचार हो गया। लेकिन मैं कहना चाहता हूं कि मोहम्मद की तलवार ठीक सर्जिकल है, ठीक सर्जन के हाथ में जैसी तलवार हो, ऐसी !

और कभी ऐसी जरूरत निश्चित हो जाती है कि किसी ऐसे व्यक्ति को भी तलवार उठानी पड़ती है, जिनके हाथ में तलवार की हम कल्पना भी नहीं कर सकते। मोहम्मद के हाथ में तलवार की कोई कल्पना करने की जरूरत नहीं है। मोहम्मद के पास जो हृदय है, **वह अत्यंत कोमल से कोमल हृदय है**। लेकिन मोहम्मद के चारों तरफ जो स्थिति हैं, उसमें अगर हम कोमल हृदय को कुछ भी काम करना है, तो इसे काम में तलवार लेनी पड़ेगी। लेकिन इसका दुष्परिणाम होता है। वह मोहम्मद के हाथ में तलवार लेने से नहीं होता है। वह पीछे होता है, क्योंकि तब बहुत से ऐसे लोग मोहम्मद के पीछे खड़े हो जाते हैं, जिनका मजा केवल तलवार हाथ में लेने का है। वे उपद्रव खड़ा करते हैं। उन्होंने मोहम्मद को बदनाम किया है। उन्होंने इस्लाम को भी विकृत किया है। लेकिन, मोहम्मद तलवार लेते हैं, क्योंकि जरूरत है।

कृष्ण युद्ध की सहायता में खड़े हो जाते हैं, युद्ध करवाते हैं, क्योंकि उसकी जरूरत है। असल में इस जगत में चुनाव जो है, वह, एक बात समझ लेगें, तो ख्याल में आ जाएगा। हम जगत में सब चीजों को दो में तोड़ देते है, काली और सफेद, 'ब्लैक एण्ड ह्वाइट' जबकि वस्तुतः जगत में कोई चीज ब्लैक एण्ड ह्वाइट नहीं होती है। सभी चीजें ग्रे होती हैं, ग्रे की डिग्रीज होती हैं, डिग्रीज ऑफ ग्रे। थोड़ी ज्यादा सफेद और थोड़ी कम सफेद और थोड़ी ज्यादा काली और थोड़ी कम काली ! जब भी हम कहते हैं कि यह ठीक और यह गलत, तब हम भूल जाते हैं कि हम जिन्दगी की बात नहीं कर रहे हैं।

मुहम्मद तलवार उठाते हैं इसलिए कि उनका न उठाना और भी बुरा होता इसको ठीक से समझ लें। लेसर इविल यही है, छोटा पाप यही है कि मोहम्मद तलवार उठा लें, क्योंकि तलवार तो उठेगी ही। और मोहम्मद नहीं तलवार उठायेंगे, तो जिसके हाथ तलवार उठेगी वह ग्रेटर इविल होगा। मोहम्मद जिस स्थिति में हैं, उसमें उन्हें प्रतीत होता है कि उन्हें ही तलवार उठा लेना उचित होगा।

कृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि तू लड़, इसलिए नहीं कि कृष्ण की लड़ने में कोई उत्सुकता है। कृष्ण से ज्यादा स्त्रैण चित्त का आदमी तो खोजना बहुत मुश्किल होगा। इसलिए हमने तो उनका चित्र भी स्त्री-जैसा बनाया है। इतना स्त्रैण चित्र हमने किसी का नहीं बनाया। कृष्ण को जितना हमने स्त्री-जैसा चित्रित किया, उतना हमने बुद्ध और महावीर को भी नहीं किया, लाओत्से को भी नहीं किया। कृष्ण को तो हमने बिल्कुल स्त्रैण बनाया है। सब साज-संवार उनका स्त्रियों जैसा है। कपड़े भी स्त्रियों जैसे हैं। सारा ढंग उनका स्त्रियों-जैसा है। उनका नाच, उनका गीत, सब स्त्रियों-जैसा है। यह आदमी, जिसको हमने इतना स्त्रैण चित्रित किया है, वह अर्जुन को, जो कि बहुत बहादुर पुरुष था, भाग रहा था, लड़वाने की प्रेरणा देनेवाला बना। आखिर कृष्ण को इतना आग्रह करने की क्या जरूरत है कि अर्जुन लड़े? जरूरत इसलिए है कि कृष्ण को एक बात साफ है कि अर्जुन नहीं लड़ता है, तो भी जो बुराई है, वह होकर रहेगी, लेकिन बहुत बुरे हाथों से होकर रहेगी, अर्जुन उन सब से बेहतर है। और अर्जुन युद्ध से भागना चाहता है, इस वजह से कृष्ण को और भी स्पष्ट हो गया कि यह आदमी बेहतर है और युद्ध इसी के द्वारा करवा लेना बेहतर है। युद्ध तो होकर रहेगा। युद्धखोर करेंगे ही।

कभी-कभी मैं सोचता हूं कि अगर अर्जुन की जगह भीम के रथ पर कृष्ण बैठे होते, तो शायद गीता पैदा न होती। क्योंकि भीम इतना आतुर होता कि कहता: जल्दी रथ बढ़ाओ, आगे ले चलो। हो सकता है कि कृष्ण खुद ही कहते कि क्षमा कर, यह युद्ध ठीक नहीं है। यह अर्जुन इसमें कारगर है, अर्जुन भागने की कहने लगा। उसने सिद्ध कर दी एक बात कि वह आदमी भला है, एकदम भला। कृष्ण को पक्का हो गया कि इस भले आदमी के हाथ में तलवार दी जा सकती है। असल में सारी बात जो है, वह यह है कि **तलवार भले आदमी के हाथ में ही दी जा सकती है।** और तलवार अक्सर बुरे आदमी के हाथ में होती है। और भला आदमी तलवार छोड़ देता है। और बुरा आदमी तलवार उठा लेता है। इसलिए भला आदमी बुराई को करने का कारण बनता है।

जगत में जब चुनाव करना पड़ता है, तो विकल्प ऐसा नहीं होता कि यह अच्छा है और यह बुरा है। विकल्प ऐसा होता है कि यह कम बुरा है और यह ज्यादा बुरा है। जीवन में सब चुनाव ऐसे ही हैं। यहां ऐसा नहीं है कि यह अमृत है और यह जहर है। यहां ऐसा है कि यह कम जहर है और यह ज्यादा जहर है। **कम जहर को चुनना पड़ता है, यही अमृत का चुनाव है।** मोहम्मद और कृष्ण उस कम जहर को चुनते हैं। परिस्थितियां उनकी भिन्न हैं।

थोड़ा सोचें कि कृष्ण यदि न होते पहले, इस महाभारत के युद्ध से पहले, तो हमारी कल्पना में यह खयाल कभी न आता कि कृष्ण भी युद्ध करवा सकते थे। कभी खयाल न आता। जरा और इस तरह सोचें कि बुद्ध और जिये होते बीस वर्ष और महाभारत जैसी स्थिति आ गई होती, तो हमारी कल्पना में भी नहीं आ सकता था कि बुद्ध भी युद्ध के लिए 'हां' कह सकते थे। हमारी देखने की पर्सपेक्टिव सीमित होती है, हमारा परिदृश्य सीमित होता है। जो हो गया, वही हम देखते हैं। जो हो सकता था, वह हम नहीं देखते हैं। अगर कृष्ण न होते दस साल पहले महाभारत के, तो हमें कभी भी खयाल न आता कि यह आदमी, जो बांसुरी बजाता था, जो प्रेम के गीत गाता था, जो इतने माधुर्य से भरा था, वह युद्ध के लिए गीता-जैसा संदेश दे सकता है। **मेरी दृष्टि में गीता से ज्यादा युद्ध के लिए प्रेरणा देने-वाली और कोई धर्म पुस्तक जगत में नहीं है।** लेकिन इसका कारण यह नहीं है कि यह पुरुष-चित्त है। इसका कारण, इसका कारण यह है कि चित्त तो बिल्कुल स्त्रैण है, बहुत रिसेप्टिव, बहुत ग्राहक है; लेकिन जिस स्थिति में ये खड़े हैं, उस स्थिति में इनका ग्रहणशील चित्त परमात्मा को पूरी तरह ग्रहण करके जो कहता है, उसी को करने में ये संलग्न हो जाते हैं।

यह मोहम्मद की तलवार परमात्मा के लिए उठी तलवार है। ऐग्रेसिव मोहम्मद बिल्कुल नहीं है, आक्रमक बिल्कुल नहीं है। लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि मोहम्मद के पीछे आक्रमक लोग इकट्ठे नहीं हुए। लेकिन पीछे इकट्ठे होनेवालों की जिम्मेदारी मोहम्मद पर नहीं जाती, किसी पर नहीं जाती। महावीर जितना साहस का आदमी खोजना मुश्किल है; लेकिन कोई सोच भी नहीं सकता था कि महावीर के पीछे कमजोर और कायर इकट्ठे हो जायंगे। वे इकट्ठे हुए। क्योंकि उनको आड़ मिल गयी। **जीवन बहुत अजीब है।** महावीर ने अहिंसा की बात की और महावीर ने कहा कि अहिंसा को वही उपलब्ध हो सकता है, जिसके चित्त में भय बिल्कुल नहीं रहा हो। लेकिन भयभीत आदमी ने सोचा कि अहिंसा अच्छा धर्म है, इसमें

कोई किसी को मारता-पीटता नहीं। न हम किसी को मारेंगे, न कोई हमें मारेगा। वह जो भयभीत आदमी था, उसको अहिंसा परम धर्म मालूम पड़ा। इसलिए नहीं कि अहिंसा परम धर्म था, बल्कि इसलिए कि उसके भय को लगा कि सारी दुनिया अहिंसा मान ले, तो बड़ी निर्भयता से रहने का मजा आ जायगा। तो जितने भयभीत आदमी थे वे महावीर के पीछे इकट्ठे हो गए।

इसलिए आकस्मिक नहीं है कि महावीर के पीछे जो वर्ग इकट्ठा हुआ, वह एकदम इम्पोटेन्ट है, एकदम नपुंसक है। उसने जिन्दगी में सब तरफ से अपने को सिकोड़ लिया है। वह केवल बनिये के धंधे को पकड़कर जी रहा है पच्चीस सौ साल से। क्या कारण है? उसको कोई धन्धा समझ में नहीं आया, क्योंकि सभी धन्धों में उसे खतरा लगा। सिर्फ एक धंधा उसको लगा कि यह ठीक है। इसमें ज्यादा झंझट नहीं है, झगड़ा नहीं है। और न कुछ पैदा करता है, न कहीं जाता है। बीच में मध्यस्थ का काम करता है, दलाल का काम करता है। कोई सोच नहीं सकता था कि महावीर जैसे हिम्मतवर आदमी के पीछे इतने गैर-हिम्मत वाले लोग इकट्ठे होंगे, जो कुछ न कर सकेंगे, सिवाय दलाली के। दलाली भी कोई धन्धा है? दलाली से भी कोई इनर पोटेन्शियल, जो भीतर छिपी हुई शक्तियां है, वे जग सकती हैं? लेकिन यह सब बहुत ज्यादा सुविधापूर्ण मालूम पड़ा है भयभीत आदमी को। अजीब बात है, महावीर के पीछे कायर लोग इकट्ठे हो गए।

मोहम्मद अत्यन्त दयालु व्यक्ति हैं। और दया के कारण ही उन्होंने तलवार उठाई। **अगर दया थोड़ी भी कम होती, तो वे कभी तलवार नहीं उठाते।** लेकिन उनके पीछे खूंखार और जंगली आदमी इकट्ठे हो गए। क्योंकि तलवार उठी, तो उन्होंने कहा कि बड़े मजे की बात है, धर्म और तलवार दोनों का जोड़ हो गया, सोने में सुगंध आ गई। अब हमसे कोई यह नहीं कह सकता कि तुम मार रहे हो। अब हम धर्म के नाम पर मारेंगे और काटेंगे। तो मध्य एशिया की जितनी बर्बर कौमें थीं, तातार थे, हूण थे, तुर्क थे, वे सब इस्लाम में सम्मिलित हो गए, **क्योंकि तलवार को पहली दफा अपराधी की जगह से हटाकर मंदिर का रुतबा मिला था।** वे सब पीछे खड़े हो गए तलवार लेकर। और उन्होंने सारी दुनिया रौंद डाली। आज जो दुनिया में इस्लाम का इतना प्रभाव है, यह मोहम्मद की वजह से नहीं है, जो इतनी संख्या है, वह मोहम्मद की वजह से नहीं है। यह इन दुष्टों की वजह से है, जो पीछे इकट्ठे हो गए। इन्होंने रौंद डाली सारी दुनिया। लेकिन **साथ ही इस्लाम को भी मार डाला इन्होंने। शांति का धर्म सबसे ज्यादा**

अशांति का धर्म बन गया। लेकिन मोहम्मद जिम्मेदार नहीं हैं। मोहम्मद क्या कर सकते हैं ? महावीर क्या कर सकते हैं ? महावीर सोच ही नहीं सकते थे कि मेरे पीछे कायरों की एक कतार खड़ी हो जायगी। कल्पना भी नहीं कर सकते थे।

जीवन के तर्क बड़े अजीब हैं, बहुत अजीब हैं। कुछ कहा नहीं जा सकता। और एक तर्क, क्योंकि लाओत्से को समझने में उपयोगी होगा, यह है कि **अक्सर आप विरोधी आदमी से प्रभावित होते हैं।** द अपोजिट से। जैसा सेक्स में होता है, वैसा ही सब चीजों में होता है। आप अपने से विपरीत आदमी से प्रभावित होते हैं। यह बड़ी खतरनाक बात है। लेकिन यह होता है। महावीर बहादुर से बहादुर हैं, इसलिए उनको यह नाम मिला। यह नाम तो उनका नाम नहीं है। उनका नाम तो वर्द्धमान है। महावीर का नाम मिला। उनकी वीरता का कोई मुकाबला ही नहीं है। सच में नहीं है। लेकिन महावीर के पीछे जो लोग प्रभावित हुए, वे कायर होंगे, यह भी सोचा नहीं जा सकता था। **लेकिन हमेशा ऐसा होता है। वीरता से कायर ही प्रभावित होते हैं। वीर प्रभावित नहीं होते हैं।** वीर क्यों प्रभावित होंगे ? होंगे वीर, तो ठीक है, अपने घर के होंगे। लेकिन कायर एकदम प्रभावित हो जाते हैं कि यह रहा महावीर ! इसके चरणों में सिर रख दो। यह है आदमी ! असल में क्यों ? क्योंकि यह कायर भी सोचता रहा है कि हम भी ऐसे हो जाएं। हो तो नहीं सकते। यह आइडियल है, यह आदर्श है। लेकिन उसके चरणों में सिर तो रख ही सकते हैं। इसका यश-गान तो कर ही सकते हैं। इसका जय-जयकार तो बोल ही सकते हैं।

यह उनका आदर्श बन जाता है, क्योंकि भीतर इसके विपरीत उनमें आदमी छिपा है। वे इकट्ठे हो जाते हैं। और वे अड़चन में डाल देते हैं। सदा ही ऐसा होता है। हम अपने से विपरीत से आकर्षित हो जाते हैं। और तब बड़ी कठिनाई होती है। हम जिस वजह से आकर्षित होते हैं, हम उससे उल्टे होते हैं। और फिर यह आकर्षित हुए लोग ही पीछे सम्प्रदाय निर्मित करेंगे, संस्था चलाएंगे, संगठन बनाएंगे। और जो सम्प्रदाय होगा, वह इनके हाथ में होगा। फिर वे सारी व्यवस्था बदलेंगे, वे री-इन्टरप्रेट करेंगे, नई व्याख्याएं करेंगे। और सारी चीजें और ही हो जाएंगी। **सारी चीज और ही हो जायगी।**

अगर इतिहास का यह ढंग हमारे खयाल में आ जाए, तो शायद भविष्य में हम आदमी को सचेत कर सकें कि तुम जरा सोच-समझकर पांव बढ़ाना। अभी एक मनस्-विद् कहते हैं कि जब कोई पुरुष किसी स्त्री से प्रभा-

वित होता है, तब वह उन गुणों से प्रभावित होता है, जो स्वयं उसमें नहीं हैं। स्त्री उन गुणों से प्रभावित होती है, जो उसमें नहीं हैं। जो हम में नहीं हैं, उससे ही हम प्रभावित होते हैं। जो हम में है, उससे हम कभी प्रभावित नहीं होते। क्योंकि वह तो हम में है ही, उससे प्रभावित होने का कोई कारण नहीं है। चूंकि विपरीत भाव से लोग प्रभावित होते हैं, इसलिए जितने विपरीत गुण होते हैं, उतना ज्यादा रोमांस, उतना ज्यादा प्रेम पैदा होता है। लेकिन फिर विवाह के बाद वे ही विपरीत गुण कलह के कारण भी बनते हैं। अब यह मुश्किल है। इसलिए मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि जितने बड़े प्रेम से विवाह होगा, उतने ही खतरे में वह ले जा सकता है, क्योंकि प्रेम का मतलब यह होता है कि बहुत विपरीत आकर्षण था। जो बहुत कठोर आदमी है, वह नाजुक से प्रभावित होगा। लेकिन जब दोनों साथ रहेंगे, तब नाजुक और कठोर में कोई तालमेल नहीं बैठेगा, झंझट खड़ी हो जायगी। अगर कोई बहुत इन्टेलेक्चुअल, बहुत बुद्धिमान आदमी है, तो वह बुद्धिमान स्त्री से प्रभावित नहीं होगा, कभी नहीं होगा। वह ऐसी कोई स्त्री खोजेगा, जिसमें बुद्धि नाम मात्र की न हो, वह उससे प्रभावित होगा। लेकिन फिर अड़चन आएगी। क्योंकि जब दोनों साथ रहेंगे, तब वह पायेगा कि कहां की जड़बुद्धि से पाला पड़ गया।

अब इसमें किसी का कसूर नहीं है। यह सब दिक्कत जीवन का विपरीत तर्क डालता है। विपरीत से हम प्रभावित होते हैं, लेकिन विपरीत के साथ हम रह नहीं सकते। इसलिए हमारी आखिरी दिक्कत यह होती है कि **जिससे हम प्रभावित होते हैं, उसके साथ रह नहीं सकते और जिसके साथ हम रह सकते हैं, उससे हम कभी प्रभावित नहीं होते**। इसलिए पुराने लोग ज्यादा होशियार थे, या कहें कि ज्यादा चालाक थे। वे कहते थे कि **विवाह किसी और से करना और प्रेम किसी और से करना**। ये दोनों काम कभी एक साथ मत करना। विवाह उसके साथ करना, जिसके साथ रह सको। और प्रेम उससे करना, जिससे प्रभावित हो। और इनको कभी विपरीत मत करना, इनको कभी एक साथ न करना। अभी अमरीका के जो चिंतनशील लोग हैं, वे कहते हैं कि अगर अमरीका को बचाना है, तो हमें यह पुरानी चालाकी वापस लौटानी पड़ेगी, क्योंकि अमरीका ने एक गलती कर दी है। गलती अब लगती है, क्योंकि वे कहते थे कि जिससे प्रेम हो, उसी से विवाह करना। है तो बात अद्भुत, लेकिन वह घट नहीं पाती है, क्योंकि प्रेम उससे हो जाता है, जो कि विपरीत है। फिर उसके साथ रहने में मुसीबत खड़ी हो जाती है। जिन-जिन चीजों ने प्रभावित किया था, वे ही कलह का

कारण बन जाती हैं। क्योंकि उनसे आपका तालमेल तो बैठ ही नहीं सकता।

ठीक जैसा पति-पत्नी के बीच घटता है, वैसा ही गुरु-शिष्य के बीच घटता है। यह गुरु-शिष्य के बीच भी बड़ा रोमान्स है। विपरीत से प्रभावित होकर लोग चले आते हैं; फिर साथ रहना भी मुश्किल होता है। **इसलिए जिन्दा गुरु के साथ रहना बहुत कठिन पड़ता है।** मरे गुरु के साथ दिक्कत नहीं पड़ती। क्योंकि दूसरा मौजूद ही नहीं होता है। आपको जो मर्जी हो, माने चले जाओ। अब जीसस ने कहा है कि कोई तुम्हारे गाल पर चांटा मारे, तो दूसरा गाल भी उसके सामने कर देना। और ईसाइयत ने इतनी हत्याएं की हैं कि जिनका हिसाब लगाना मुश्किल है। यह क्या बात है? जीसस जैसे आदमी के पास ये लोग कैसे इकट्ठे हो गए? ये प्रभावित हुए, यह दुष्ट वर्ग प्रभावित हुआ। इसने कहा कि बात तो यही सच है। हम नहीं कर पाते, तो कोई हर्ज नहीं। लेकिन कम से कम हम जीसस की जय-जय तो कर ही सकते हैं, जयकार तो कर ही सकते हैं। वे इकट्ठे हो गए। **उन्होंने लोगों की गर्दन काट दीं, यह शिक्षा समझाने के लिए कि जो तुम्हारे गाल पर एक चांटा मारे, दूसरा उसके सामने कर देना।** तो उन्होंने लाखों लोगों की गर्दनें काट दीं। क्योंकि यह सिद्धान्त समझाना बिल्कुल जरूरी है, इस सिद्धांत के बिना दुनिया का हित न होगा।

ऐसा विपरीत घटित हो जाता है। इसलिए मोहम्मद आक्रमक नहीं हैं, न कृष्ण आक्रमक हैं। और मोहम्मद या कृष्ण के पास जैसे ही अनुभूति का सागर खुलता है, वैसे ही स्त्रैण चित्त के द्वार खुल जाते हैं। स्त्रैण चित्त से अर्थ केवल इतना ही है कि **उस क्षण में आदमी जीवन के प्रति आक्रामक न होकर जीवन की धाराओं के प्रति ग्राहक हो जाता है।** वह एक गर्भ बन जाता है और जीवन को अपने भीतर समा लेने को तैयार हो जाता है। वह स्वीकार करने लगता है; अस्वीकार करना बन्द कर देता है। और उसकी स्थिति टोटल एक्सेप्टिबिलिटी की, **तथाता की हो जाती है।** वह राजी हो जाता है। **यह राजी-पन, परिपूर्ण राजी-पन ही स्त्रैण चित्त का लक्षण है।**

● एक आखिरी सवाल। एक छोटा-सा प्रश्न एक मित्र ने पूछा है कि क्या निरहंकार की क्षमता साधारण आदमी को भी मिल सकती है? उनके प्रश्न से ऐसा लगता है कि वह बेचारे साधारण आदमी को कैसे मिलेगी? जबकि सचाई यह है कि असाधारण को मिलनी बहुत कठिन है। क्योंकि असाधारण का मतलब ही अहंकारी होता है। साधारण को ही मिल सकती

है, लेकिन साधारण, साधारण को नहीं; एक्स्ट्राऑर्डिनरीली ऑर्डिनरी, असाधारण रूप से जो व्यक्ति साधारण होता है, उसे मिलती है। साधारण साधारण मैं उसको कहता हूं, जिसको सब कोई साधारण कहते हैं; लेकिन वह खुद अपने को साधारण नहीं मानता। असाधारण रूप से साधारण मैं उसे कहता हूं, जिसको दुनिया चाहे असाधारण कहती हो, लेकिन वह अपने को साधारण ही मानता है।

मैं दस-बारह वर्ष पूरे मुल्क में घूमा, लाखों लोग मुझसे मिले। सैकड़ों लोगों ने मुझसे आकर कहा कि आप जो बातें कहते हैं, वह साधारण आदमी की समझ में कैसे आएंगी ? मैंने उनसे पूछा कि आपकी समझ में आती हैं, तो उन्होंने कहा कि मेरी तो समझ में आती हैं, लेकिन साधारण आदमी के समझ में कैसे आएंगी ? मैंने कहा कि मुझे घूमते बारह साल हो गए, लाखों लोग मैंने देखे, सैकड़ों लोगों ने यह सवाल मुझसे किया, अब तक मुझे साधारण आदमी नहीं मिला, जिसने कहा हो कि मैं साधारण आदमी हूं, मेरी समझ में यह कैसे आएगी। मैंने उनसे कहा कि वह साधारण आदमी कहां है ? मुझे उससे मिला दो, एक दफा उसके दर्शन करने दो। कोई आदमी अपने को साधारण नहीं मानता। सभी आदमी अपने को असाधारण मानते हैं। **यही अहंकार है।** और आदमी अपने को साधारण जान ले और मान ले, तो अहंकार विदा हो गया। और सभी आदमी साधारण हैं। असाधारण कोई भी नही है। **सिर्फ एक ही आदमी को हम असाधारण कह सकते हैं, जो इस साधारणता को जान ले, बस !** और किसी को असाधारण नहीं कहेंगे। मन हमारा यह करता नहीं मानने को कि मैं और साधारण आदमी ! कितने-कितने उपाय से हम समझाते हैं कि मेरे जैसा आदमी कभी नहीं हुआ, कभी नहीं होगा। हालांकि कभी इसको सोचते नहीं कि ऐसा कहने का क्या कारण है ? क्या ऐसी विशेषता है ? क्या ऐसी खूबी है ? कुछ भी ऐसी खूबी नहीं, कुछ भी ऐसी विशेषता नहीं। लेकिन मन यह मानने को नहीं करता कि मैं साधारण हूं। क्योंकि जैसे ही मैंने यह माना कि मैं साधारण हूं, **वैसे ही ऊपर चढ़ने की यात्रा बन्द होती है।**

असल में असाधारण मानने के कारण हैं। जब मैं मानता हूं कि मैं असाधारण हूं, तब मैं जहां भी हूं, वह जगह मेरे योग्य नहीं रहती। मेरे योग्य जगह तो ऊपर है, जहां मैं नहीं हूं। दुनिया को पता नहीं है और दुनिया बाधाएं डाल रही है। अन्यथा मैं इस ठीक जगह पर अपनी पहुंच जाऊं। पहुंच कर मैं रहूंगा। ठीक जगह मेरी सदा मुझसे ऊपर है। जहां मैं हूं, वह मेरे योग्य जगह नहीं है। इसलिए अपने को असाधारण मानता हूं कि मैं अपनी ठीक

जगह को पा लूं। और, वह ठीक जगह मुझे कभी नहीं मिलेगी, क्योंकि जहां मैं जाऊंगा, वह जगह साधारण हो जायगी। और मेरी असाधारण जगह और ऊपर उठ जायगी। अहंकार अगर चढ़ता है ऊपर, तो वह तभी चढ़ पाता है, जब वह मानता है कि ऊपर ही मेरी जगह है, नीचे मेरी जगह नहीं है। यह अहंकार की दौड़ की कीमिया है, केमिस्ट्री है।

लाओत्से कहता है कि अगर तुम जान लो कि अभी तुम साधारण ही हो, 'नो-बडी' हो, न-कुछ हो, तो तुम ऊपर न चढ़ सकोगे। साधारण का खयाल आते ही तुम्हें लगेगा कि जिस जगह मैं खड़ा हूं, यह भी कहीं मेरी अनाधिकार चेष्टा तो नहीं है, शायद यह भी मेरे योग्य न हो। तुम और पीछे हट जाओगे। और तुम एक दिन वहां हट जाओगे, जहां और हटने की कोई जगह नहीं है। तुम एक दिन वहां हट जाओगे, जहां हटने को कोई राजी नहीं होता। तुम एक दिन वहां हट जाओगे, जहां कोई प्रति-स्पर्धा नहीं करता कि यहां से हटो। लाओत्से कहता है, **उसी दिन तुम असाधारण जीवन को उपलब्ध हो जाओगे।** क्योंकि इतना जो विनम्र हो गया, अगर उसको भी परमात्मा नहीं मिलता तो परमात्मा की सारी बातचीत बकवास है। इतना जो शून्य हो गया, अगर उसको भी पूर्णता का साक्षात्कार नहीं होता, तो पूर्णता का साक्षात्कार होता ही नहीं होगा। यह जो साधारण हो जाने की अपनी तरफ से चेष्टा है—समझ, साधना, जो भी हम कहें, ऐसा मत सोचें कि साधारण आदमी यह कैसे करेगा ? **प्रत्येक आदमी साधारण है और प्रत्येक यह कर सकता है।** लेकिन प्रत्येक को यह वहम है कि वह असाधारण है। उस वहम को तोड़ना जरूरी है।

और लाओत्से यह नहीं कहता कि आप तोड़िये ही। वह यह कहता है कि अगर नहीं तोड़ियेगा, तो दुख पाइएगा। और दुख आप पाना नहीं चाहते हैं। लेकिन जिस चीज से आप दुख पाते हैं, उसको सम्हाल कर चलते हैं। करीब-करीब ऐसा मामला है कि हम अपनी बीमारियों को सम्हाल कर चलते हैं, कहीं बीमारी छूट न जाए, और तब दुख पाते हैं। और शोरगुल मचाते हैं कि बहुत दुख है, बहुत दुख है। लेकिन जिस चीज से हमें दुख मिलता है, उसे हम छोड़ना नहीं चाहते। **अहंकार की गांठ हमारे सब दुखों की जड़ है। और अपने को साधारण जान लेना सब दुखों की औषधि है।**

चौबीस घंटे के लिए कभी प्रयोग करके देखें, छोड़ें, ज्यादा की फिक्र न करें। चौबीस घंटे के लिए साधारण हो जाएं। चौबीस घंटे एक ही स्मरण रख लें कि मैं साधारण आदमी हूं, 'न-कुछ'। और चौबीस घंटे के बाद आप

फिर कभी असाधारण न हो सकेंगे और न होना ही चाहेंगे। क्योंकि साधारण होने में आपको ऐसे आनन्द की झलक मिल जाएगी, जिसकी आप कल्पना भी नहीं कर सकते हैं। लेकिन वह झलक मिलती नहीं, क्योंकि आप ऐसे अकड़े हुए हैं असाधारण होने में। वह झलक मिले कैसे ! द्वार-दरवाजे बन्द करके बैठे हैं—असाधारण होने में। अपने सिंहासन से नीचे उतरें। अहंकार के स्वर्ण-सिंहासनों पर जीवन का रहस्य नहीं है। विनम्रता के साधारण धूल-धूसरित मार्गों पर बैठ जाने से जो मिल जाएगा, वह अहंकार के स्वर्ण-मंडित शिखरों पर भी बैठने से नहीं मिलता है।

आज इतना ही।

कोई जायगा नहीं। आज आखिरी दिन है। दस मिनिट कीर्तन में डूब कर जाएं। शायद कीर्तन आपको साधारण बना दे। वैसे आप अकेले बैठे रहते हैं कि कोई देख न ले कि इतना असाधारण आदमी और ताली बजा रहा है। जिनको न नाचना हो, वे बीच में खड़े हो जाएं। बीच में नाचने का खयाल आ जाए, तो बाहर आ जाएं। बिल्कुल साधारण हो जाएं। पन्द्रह मिनिट के लिए तो बिल्कुल साधारण हो जाएं। और देखें कि साधारण कोई भी हो सकता है।

●●

AWAKENING

Oh, Gracious Lord !
The Disturber of my deep sleep !!
I am lost and I lost,
Wandered and I am wondered.
Now shelter is sought in You !
I am nothing—feel, I am everything;
Accept "OHM"—You all merciful.
Read all but all in vain,
Heard "THOU" and REALISED...
"Be empty—you will know."

"OHM" (H)
DABHOW

With Best Compliments

From :-

ASHOK & COMPANY

Office : WZ-76, Siri Nagar, Shakur Basti,
DELHI-34

PHONE : 568403

(Manufacturers of High Class
Woven Labels)

REPRESENTATIVE :

SWAMI DHARM SWABHAV

(Raj Chaurasia)

30, C. S. P., Sufdarjung Enclave,
NEW DELHI-16

ओम्
जय
रजनीश
प्रिये !

मित्र मिलन के घर में,
मंगल - कलश धरे !! ओम् ... !!
सतयुग, त्रेता, द्वापर, कलयुग
सबमें चरण धरे !
भ्रांति विनाशक, सत्य प्रकाशक
करुणा - भाव भरे !! ओम् ... !!
वीर, बुद्ध, पैगम्बर, शंकर,
सबको साथ लिये !
वेद, पुराण, उपनिषद, गीता,
सबको अर्थ दिये !! ओम् ... !!
साधु, संत, योगी, ज्ञानेश्वर,
तुम भोले बाबा !
रूप भिन्न, मंजिल अभिन्न है,
क्या काशी, काबा !! ओम् ... !!
हास-विलास, प्रेम की प्रतिमा,
लीला नित्य करे !
सदियों से सूखे दिल जिनके,
उनसे प्रेम झरे !! ओम् ... !!

— *स्वामी स्वराज्यानन्द समर्थ*
प्रेमनीड, पिपरिया (म. प्र.)

युक्रान्द

जुलाई १९७२